समर्पण।

जिन स्वर्गीय महानुभाव की जीवनी लिख इस लेखक ने अपनी लेखनी को पवित्र किया है तथा जिनकी परमानुकम्पासे चार अक्षरों का ज्ञान इस दासानुदास को प्राप्त हुआ है। उन्हीं गुरुदेव

की

पवित्र स्मृति में यह तुच्छ भेंट सातिशय

भक्ति के साथ

समर्पित है।

राजधानी
करौली
गुरु पूर्णिमा
१९७५

ग्रन्थकार

सम्पादकीय

जीवन चरित्र लिखे जाने की चाल बहुत पुरानी है। हमारे प्राचीन इतिहास पुराणों में देवताओं एवं अनेक ऋषि मुनियों के चरित्र पाये जाते हैं। यही नहीं किन्तु काव्य उपन्यास आदिकों में भी एक या अनेक व्यक्तियों का चरित्र चित्रण ही किया जाता है। यह बात दूसरी है कि उनके लिखने का ढंग और है यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी रचना चरित्र चित्रण की मूल भित्ति पर नहीं है।

किसी भी स्वर्गीय महानुभाव का जीवन चरित्र पढ़ने से सद्भावों की वृद्धि होती है उनके गुणोंका अनुकरण करनेकी प्रवृत्ति होती है जीवन चरित्रों के प्रकाशित होने का यही उद्देश्य भी होता है। इस पुस्तक में जिन स्वर्गीय महानुभाव का चरित्र चित्रित किया गया है उनका जीवन धर्ममय था, अन्तिम समय तक उन महानुभाव ने अपना जीवन धर्म और विद्या के प्रचार में ही लगाया था, ऐसे जीवन चरित्रको पढ़कर हमें आशा है कि सभी पाठक सन्तुष्ट होंगे।

एक बात अवश्य है कि यह जीवन चरित्र विस्तारसे नहीं लिखा गया है बहुत सी बातें इसमें छूट भी गई हैं, शीघ्रता में ऐसा होना सम्भव भी था, द्वितीय बात यह है कि इसके लेखक बा० पूर्णसिंह जी के पास पर्याप्त सामग्री भी न थी, पुस्तक एक बार लिखी जाने के बाद इसमें कुछ आवश्यक बातें मैंने बढ़ा भी दी हैं पर यह नहीं कहा जा सकता कि [illegible] जीवन चरित्र पूर्ण हो गया तथापि पं० जी की जीवन [illegible] की मुख्य २ बातें इसमें आगई हैं। इस पुस्तक के [illegible] संस्करण में इस जीवन चरित्रको और भी पल्लवित [illegible] की जायगी।

निवेदक —

सम्पादक।

विषय-सूची ।

विषय ... पृष्ठ

प्रथम प्रकरण

द्वितीय प्रकरण

तृतीय प्रकरण

चतुर्थ प्रकरण

पञ्चम प्रकरण

षष्ठम प्रकरण

सप्तम प्रकरण

अष्टम प्रकरण

अथ भूमिका ।

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥
प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

[श्वेताश्वतरोपनिषदि अ० ६ श्लो० २३]

प्रिय-पाठकवृन्द ! आज का दिवस बड़ा शुभ तथा पुनीत है। आज गुरु पूर्णिमा है इसे हम "गुरुजयन्ती" भी कहते हैं। आइये हम सब भी श्रीगुरुदेव के चरण-कमलों में अपनी मनोवृत्तियों को जुटाकर आज मानसी गुरुपूजा को करलें। ऐसा करने से पूर्व हमें इतना जान लेना परमावश्यक होगा कि गुरु-शब्द का वाच्य पदार्थ क्या है ? संक्षेपतः यहां हम इतना ही कहेंगे कि जो सृष्टिकर्त्ता इस चराचर जगत् में व्याप्त हो रहा है उसी परब्रह्म की प्राप्ति के मार्गको हमें जो दिखा देवे वही हमारा यथार्थ गुरु है । उपनिषदादि ग्रन्थों के गूढ़ रहस्योंको जिन्होंने खोल २ कर हमारे सम्मुख रक्खा है और इस प्रकार आत्मविद्या का हमें उपदेश दिया है वे सब गुरु पद के यथार्थ वाच्य हो सकते हैं। ऐसे गुरुजनों की स्नान, चन्दन, पुष्प, दक्षिणा, भोजन, वस्त्र, आभूषण, आदि द्वारा विधिवत् पूजा करना ही गुरुपूजा है। परन्तु आज हम लोग अपने स्वर्ग प्राप्त श्रीगुरुदेववर्य [श्रीमहामहिम वेदव्यासख्यातजी] की मानसी-पूजा केवल वाक्यपुष्पोपहार द्वारा ही किया चाहते हैं। स्वयं श्री वेदव्यास भगवान् जी लिख गये हैं कि पांच अग्नियों की पूजा सदैव प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिये। वे पांच अग्नियां [प्रकाशस्वरूप पदार्थ] ये हैं, १ पिता, २ माता, ३ अग्नि, ४ आत्मा, और ५ गुरु-

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः ।
पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ !

(महाभारते विदुरप्रजागरे)

गुरु पूजा की इसी प्रेरणा ने हमें इस योग्य बनाया है कि सनातनधर्मी जनता के समक्ष हम आज श्रीगुरुदेव वर्य के पवित्र चरित्र की इस संक्षिप्त घटनावली को रखने के लिये समर्थ हुआ हूं। इस लघु पुस्तक में आठ प्रकरण हैं और इस की सामग्री में स्वयं श्रीगुरुदेव–वर्य के हस्तलिखित कुछ नोट तथा ब्रा० स० के गत वर्षों के अङ्क ही प्रधान हैं। द्वितीय प्रकरण में स्वा० दयानन्द जी के साहचर्य का वृत्तान्त विचारपूर्वक दिया गया है इस में अनेक गुप्त वातें ऐसी प्रकट की गई हैं कि जो ब्रा० स० में पहले हमारे श्रीगुरुदेवकी लेखनी द्वारा निकल चुकी थीं।

श्री पं० ब्रह्मदेव जी मिश्र (शास्त्री) वर्त्तमान सम्पादक ब्रा० स० को अतिशय धन्यवाद है कि जिन्हों ने स्वयं इस जीवनी के लिखने का मनोरथ कर रक्खा था परन्तु इस क्षुद्र लेखक की प्रार्थना पर उन्हों ने अपना विचार परिवर्तित कर दिया । श्री पं० रामदत्त जी ज्योतिर्विद् भीमताल–नैनीताल ने भी उक्त पं० जी को लिखा था कि मैं इस जीवनी को लिखना चाहता हूं परन्तु उन्हें भी इन्होंने समझा दिया कि गुरुदेव वर्य के इस लघु–शिष्यने इस सेवाको अपने शिर पर उठा लिया है। इस में सन्देह नहीं कि यदि स्वयं पं० ब्रह्मदेव जी अथवा उक्त पं० रामदत्त जी इस जीवनी को लिखते तो यह एक अनुपम ग्रन्थ बनता परन्तु श्रीगुरुदेव की जो असीम कृपा इस अपने कनिष्ठ–शिष्य पर थी उस का बदला चुकाने का सौभाग्य इसे अपने जीवनमें कदाचित् मिलता वा नहीं इस में बड़ा संशय था । इसीलिये उक्त महानुभावों के इस भार को मैंने उठाया है।

राजधानी—करौली
गुरु–पूर्णिमा सं० १९९५ } ग्रन्थकार ।

प्रस्तावना तथा निवेदन

मङ्गलाचरणम्।

हेरम्बमवलम्बेऽहं यस्मिन् पातालयोगिषु।
दन्तेनोद्धृत्य ति क्षोणीं विश्राम्यन्ति फणीश्वराः॥ १॥
शारदा शारदाम्भोज-वदना वदनाम्बुजे।
सर्वदा सर्वदास्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात्॥ २॥

प्रिय सज्जनवृन्द! सनातनधर्मावलम्बी जनता के आप प्रतिनिधि स्वरूप हैं। जो स्वधर्म को जानते हैं उन्हीं के ऊपर धर्म का विशेष भार भी होता है। अज्ञान और अविद्या के वशीभूत होकर जो उससे विमुख हैं वे तो स्वयमेव अधोगति के गर्त्त में गिरे हुए हैं उन की दशा बड़ी शोचनीय और अनुकम्पनीय है। वे तो स्वयं दया के पात्र और अकिंचन हैं। वे बिचारे धर्म-सम्बन्धी भार को भला क्या उठायेंगे? हमें जो कुछ यहां वक्तव्य है उसे प्रकट करने के पूर्व हम अपने पाठकों का ध्यान अपने परम-प्रिय "सनातनधर्म के महत्त्व" पर आकर्षित करना चाहते हैं।

समस्त भूगोल की जन-संख्या मत-मतान्तर के विभाग से एक अरब सत्तावन करोड़ बीस लाख मानी गई है, जिनमें सबसे अधिक संख्या ईसाइयों की है कि जो सत्तावन करोड़ दस लाख हैं, इन से उतर कर बौद्ध चौवन करोड़ हैं, मुहम्मदी (मुसल्मान) भी चौबीस करोड़ पतीस लाख, और यहूदी एक करोड़ माने गये हैं। इनमें जो शेष रहे वे हम सनातनधर्मी हैं। हमारी संख्या भी इक्कीस करोड़ पचहत्तर लाख (२१७५०००००) है। इस भांति जन संख्या की दृष्टि से तो हमारा संसार के सामने कोई बड़ा महत्त्व नहीं हो सकता। परन्तु महत्त्व संसार में अवश्य है और वह दूसरे ही कारणों से है।

बन्धुवर्ग! साधारणतया भी यदि आप विचार करेंगे तो यह

स्वयमेव जान सकेंगे कि ऊपर लिखे हुए जनसमूह किसी एक महात्मा तथा महापुरुषके नामसे विख्यात हुए हैं। ईसाके नाम से ईसाई बुद्धके नामसे बौद्ध, मुहम्मदके नाम से मुहम्मदी (इस्लाम) और मूसा के नाम से यहूदी प्रसिद्ध हुए हैं। इसी लिये ईसाई १९१८ वर्ष से बौद्ध २५०० वर्ष से, मुसलमान १३३६ वर्ष से, और यहूदी ३४८६ वर्षसे संसारमें प्रकट हुए हैं परन्तु संसारका कोई भी विद्वान् आज हमें यह ठीक नहीं बता सकता कि हमारा सनातनधर्म कबसे संसार में विख्यात हुआ है? जिसके आरम्भ होनेका समय कोई नहीं बता सकता वही अनादि धर्म है। "सनातन" इस शब्दका अर्थ भी "अनादि" ही है। अतः सब मतोंमें प्राचीन और सबका पिता होने से ही हमारा "सनातनधर्म" जगत् भरमें मान्य और महनीय है।

सृष्टिके आरम्भसे समयका चक्र अनेक वार घूम चुका है इसमें पड़कर न जाने कितनी उथल पुथल संसार में अनेक बार हुई है परन्तु आज भी हम लोग यह बात दृढता पूर्वक सिद्ध कर रहे हैं कि विश्वामित्र, वसिष्ठ व्यास शुकदेवादि ब्रह्मर्षि ब्राह्मणों ने तथा हरिश्चन्द्र, दिलीप, रघु, दशरथ, जनक, भीष्म, युधिष्ठिर, श्री रामचन्द्र तथा श्री कृष्ण जैसे धर्मात्मा धर्ममूर्ति क्षत्रियों ने जिस सनातनधर्म को कल्पवृक्ष की भांति सदैव सींचा था उसमें वह अचिन्त्य शक्ति है कि जो विधर्मियों के प्रहारों को अनेक वार सहन करता हुआ भी संसार में अपना मुख समुन्नत किये हुये आज तक खड़ा है। स्वामी विवेकानन्द स्वामी रामतीर्थ आदि महात्माओं ने इस शताब्दी के पाश्चात्य विद्वानों तथा तत्त्ववेत्ताओं को भी अपनी वक्तृत्व-शक्तिसे मुग्ध करके श्री शङ्कराचार्य जैसे सनातनधर्म रक्षक महात्माओं का अनुयायी तथा शिष्य बनाया है उन्हों ने यूरोप तथा अमेरिका में भ्रमण करके वहांके निवासियों को स्पष्ट समझा दिया है कि भारतवर्ष इस समय भी उन का ज्ञान गुरु बनने का अधिकारी है। हमारे महाभारत ग्रन्थ से सिद्ध है कि महाभारत युधिष्ठिरके शासन कालमें अर्जुन तथा नकुलने हिमालयके उस पार

जाकर ईरान, तुर्किस्तान आदि देशोंको जीता था और अपने आधीन बनाया था।

पह्लवान् बर्बरांश्चैव किरातान् यवनान् शकान्।
ततो रत्नान्युपादाय वशे कृत्वा च पार्थिवान्॥
[सभा पर्व-३२ अ० १७ श्लोक]

अर्थ-पह्लव लोग तथा बर्बर, किरात, यवन, शक, आदि नामों से प्रसिद्ध जो म्लेच्छ वंशी राज गण उन देशों में उस समय शासन करते थे उन से दोनों पाण्डव वीरों ने अपनी दिग्विजय यात्रा के समय अनेक रत्न भेट में लेकर उन्हें अपने वश-वर्ती बनाया था।

महाभारत के युद्ध से अनुमान एक सहस्र वर्ष पीछे हम सनातन धर्मावलम्बी लोगोंमें शक्तिहीनता उत्पन्न होगई, प्रमादवश शास्त्रोंका पठन पाठन हम लोगोंने उस समय छोड़ दिया था। जहां अविद्या तथा मूर्खता होती है वहां वीरता, उदारता आदि सर्व गुणोंके ऊपर पानी फिर जाता है। यथा-

"बहुभिर्मूर्खसंघातै-रन्योन्यपशुवृत्तिभिः।
प्रच्छाद्यन्ते गुणाः सर्वे मेघैरिव दिवाकरः॥"

अर्थ-जैसे कि बादलोंके समूह सूर्यदेवके प्रकाशको ढक देते हैं। इसी प्रकार मूर्ख लोगों के समूह भी सम्पूर्ण गुणों को छिपा देते हैं और पशुओंकी भांति आपसमें बर्ताव करते हुए वे लोग पारस्परिक विरोध से अधोगति को प्राप्त हो जाते हैं।

अनादि काल से हमारा देश ब्राह्मण तथा क्षत्रिय प्रधान ही रहा है। जैसा कि एक प्राचीन वचन है-

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि॥

ब्रह्मबल और क्षत्रबल के द्वारा ही सनातनधर्म सदैव सुरक्षित तथा बद्धमूल रहा था। उन्हीं दिनों यह देश जगत् भरकी सभ्यताका मुख्य केन्द्र था। "स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः"

यह घोषणा भी उन्हीं दिनों की अब तक चली आ रही है। परन्तु अविद्यादेवी ने इस देश को निज पद से नीचे गिराकर हमारे प्राण-प्रिय सनातन धर्म को भी खोखला कर डाला। इस अविद्या देवीका एक मूर्तिमान् शरीर बौद्ध धर्म भी था। बौद्धों के समय में सनातन-धर्म को बड़ी क्षति उठानी पड़ी। वेद शास्त्र उस समय सब के सब लुप्त प्राय हो चुके थे।

आज से २५०० वर्ष पूर्व इस देशमें श्रीमत्स्वामी शङ्कराचार्य जी महाराजका प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने नये सिरे से वेदों तथा शास्त्रों का समुद्धार किया और इस प्रकार सनातनधर्म को खोखली जड़में मिट्टी भर कर इसे फिर दृढ मूल बना दिया।

जैसे जल सिञ्चन किये बिना वृक्षोंका जीवन असम्भव है उसी प्रकार वेदशास्त्र के प्रचार किये बिना सनातनधर्म का अस्तित्व भी स्वप्नवत् है——वेदशास्त्र के परित्याग कर देने से ब्राह्मणों ने विद्या और तपको खो दिया और क्षत्रियोंने प्रताप और ऐश्वर्य को, आज कल अनेक सज्जन यह समझते हैं कि ब्राह्मणोंने इस देशको अवनति पथपर पहुंचाया है तद्विरुद्ध हमारा यह मत है कि हमारी इसअवनति तथा दुर्दशाके मूल कारण हम क्षत्रिय ही हैं क्योंकि हम ने जब से नीतिशास्त्र का पढ़ना छोड़ कर केवल शस्त्र विद्या को ही सीखा, तथा सच्चरित्रता और न्यायपरायणता को छोड़ दिया तबसे हम में कलह विरोध आदिकी दिन प्रति दिन वृद्धि होती गई। यदि हम क्षत्रिय लोग नीतिविद्याका अनादर करके अकेले शस्त्रास्त्रको महत्व न देते तो हमारा साम्राज्यादि वैभव इतना नष्ट न हो जाता, इस सम्बन्धमें एक प्राचीन महात्माका वचन भी है——

नीतिविद्याऽस्त्रविद्या च द्वे राज्ञोऽभिहिते सदा।
तयोरप्यधिकानीती राज्यं हि ध्रियते यया॥

(अर्थ) क्षत्रियों के लिये दो विद्या बड़ोंने बताई हैं, नीतिविद्या और अस्त्रविद्या, इन दोनों में "नीति,, बड़ी है क्योंकि उस के द्वारा राज्यैश्वर्य रक्षित तथा वृद्धिङ्गत होता है। यही कारण है कि हम क्ष-त्रियोंने परस्पर युद्ध छेड़कर अपनी पहिली शक्तिको क्षीण करडाला।

हम क्षत्रियोंके बल को नष्ट हुआ देख कर हमारे देश तथा धर्म पर विदेशी तथा विधर्मी लोगों के आक्रमण होने आरम्भ हो गये। निदान दिल्लीके हिन्दू साम्राज्य का लगभग संवत् १२५० में पतन होकर यवन-साम्राज्य उसके स्थानमें स्थापित होगया, यवनों के शासन में बौद्धकाल से भी अधिक हमारे धर्म को धक्का पहुंचा, जिस सदाचारको श्रीशंकराचार्यजी ने प्रवृत्त किया था उसे हम लोग नितान्त भूल गये, यद्यपि ब्राह्मण लोग काशी, काश्मीर आदि नगरों तथा मिथिला, बंगाल आदि देशों में रहते हुए वेदशास्त्र को कुछ न कुछ पढ़ते रहे परन्तु हम क्षत्रिय तो अपने शास्त्रोंसे ऐसे विमुख हो गये कि उन के लिये हमारे हृदयों में आदर तक न रहा, कोई २ तो हम में ऐसे पामर—बुद्धि बन गये कि "संस्कृत भाषा,, को भिक्षुकों की भाषा भी कहने लगे, जिस भाषाको भीष्मपितामह जैसे शक्तिशाली योद्धा, श्रीकृष्ण जी जैसे राजनीतिज्ञ, युधिष्ठिर जैसे न्यायकारी सम्राट् विक्रमभोज जैसे यशस्वी नरेश पढ़ते थे, हाय शोक कि आज उन्हीं की सन्तति ऐसी दुर्विनीत बनगई है कि उन की प्रिय भाषा को ["Dead Lunguage] मृतभाषा तक कहते हुए नहीं लजाती, हमारे वेदशास्त्र संस्कृत भाषा में ही हैं अब कि हम ने उसे पढ़ना त्याग दिया तो हम लोग वेदशास्त्रको भी सर्वथा भूलगये जिस वस्तुके महत्त्वको जो नहीं जानता वही उसका अनादर करता है, जैसे कि भीलनी को यदि वन में कोई बहुमूल्य हीरा मिल जावे तो वह उसे न लेकर गुंजा (चौटनी) को ही ग्रहण करेगी।

हम क्षत्रियोंमें से शास्त्रोंका प्रचार जबसे उठगया तभीसे सनातनधर्मरूपी कल्पवृक्ष पर भी फिर कुठाराघात होना आरम्भ हो गया है। क्योंकि व्यास जीका नीचे लिखा वचन मिथ्या नहीं हो सकता

अल्पाश्रयानल्पफलान् वदन्ति, धर्मानन्यान्धर्मविदो मनुष्याः। महाश्रयं बहुकल्याणरूपं क्षात्रंधर्मं नेतरं प्राहुरार्याः॥

[अर्थ] धर्मोंके ज्ञाता आर्य लोग कहते हैं कि क्षात्रधर्म से भिन्न जितने धर्म हैं उन को आश्रय तथा उन का फल अत्यन्त थोड़ा है
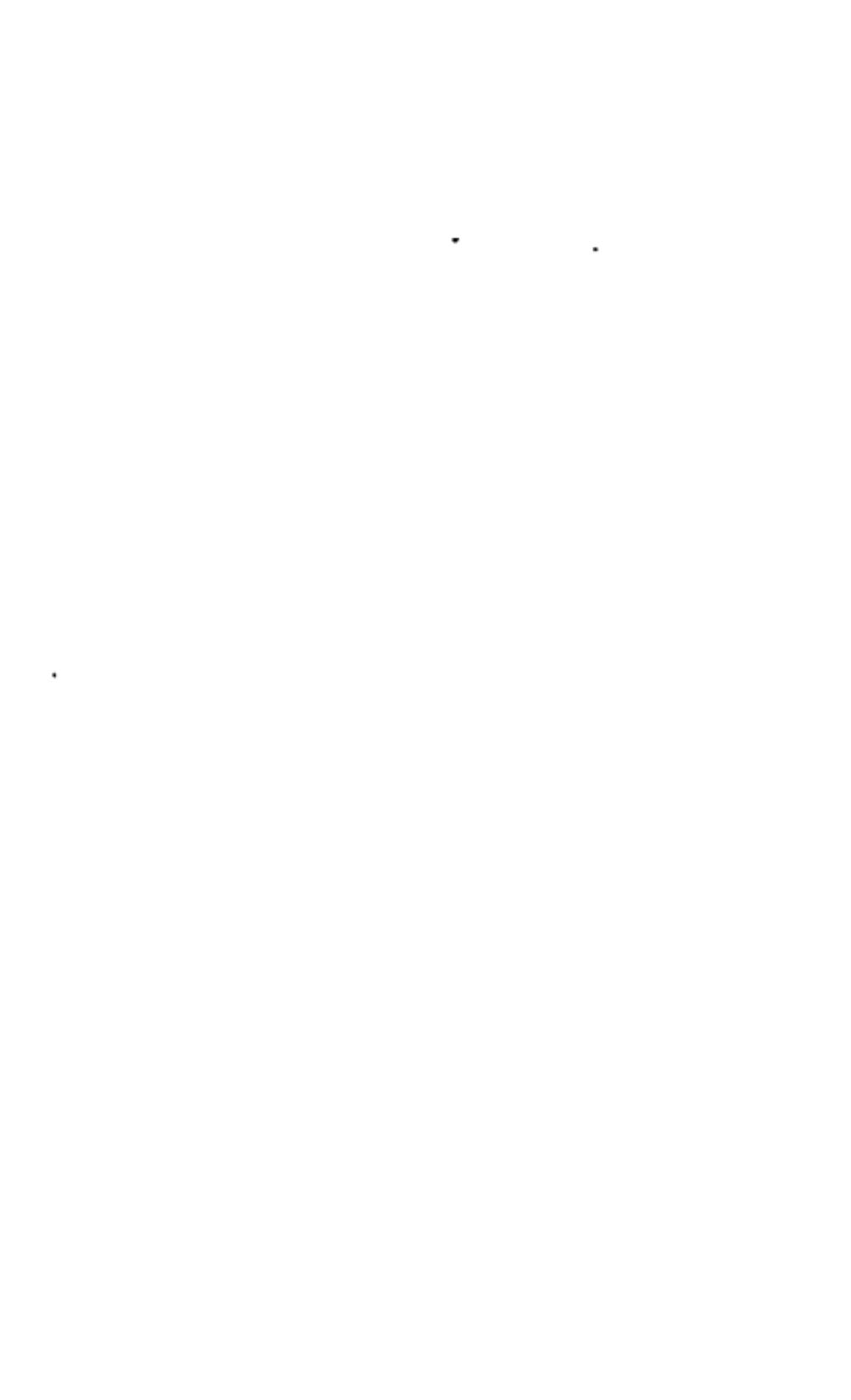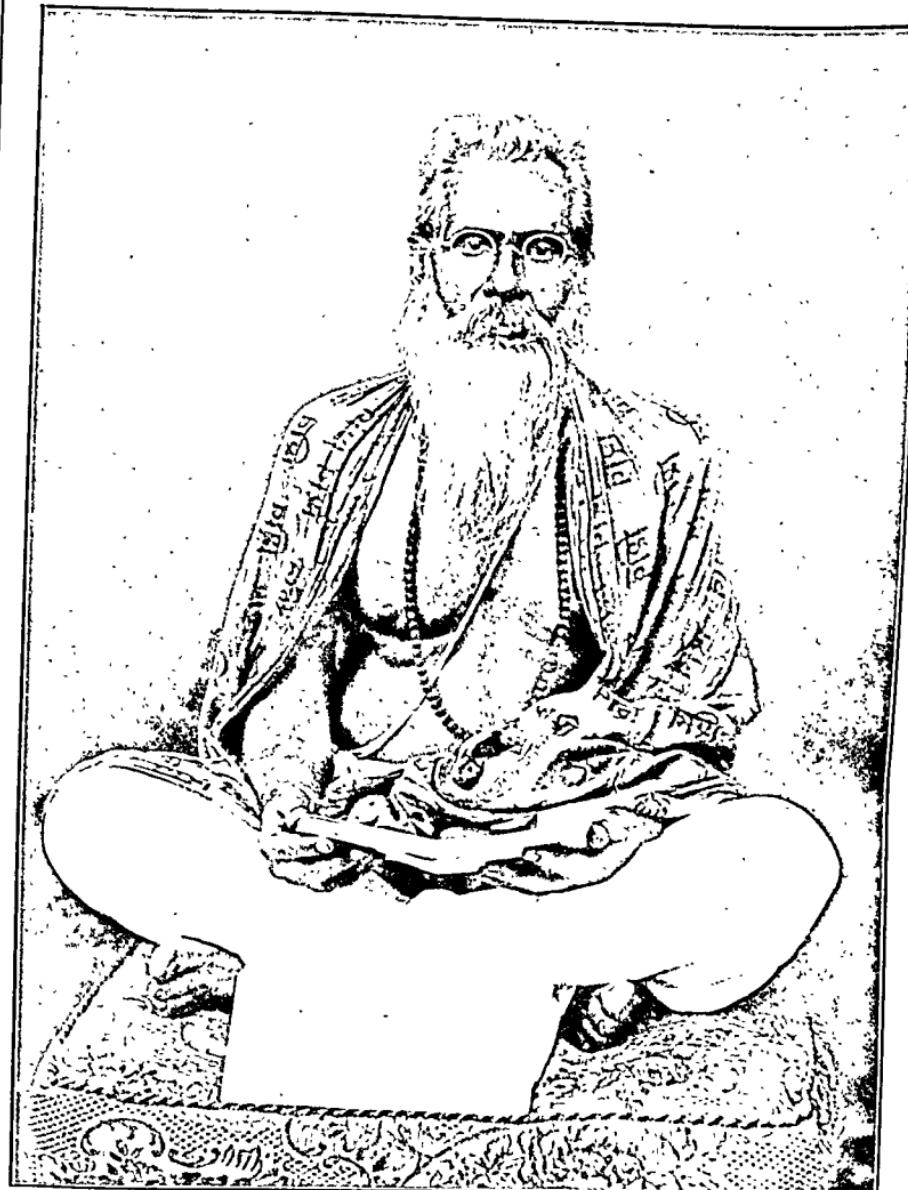
श्रीयुत पं० भीमसेनजी शास्त्री,

भूतपूर्व वेदव्याख्याता यूनिवर्सिटी कलकत्ता,

तथा

सम्पादक "ब्राह्मण-सर्वस्व," इटावा।

Narsingh Press, Calcutta.

॥ श्रीगणपतयेनमः ॥

श्री वेदव्याख्याता जी की जीवनी.

प्रथम प्रकरण।

शर्वरीदीपकश्चन्द्रः प्रभाते दीपको रविः।
त्रैलोक्ये दीपको धर्मः सुपुत्रः कुलदीपकः॥

[शुभ जन्म शिक्षा आदि]

१-पुण्य सलिला श्री भागीरथी (गंगा जी) तथा श्री कलिन्द नन्दिनी श्री (यमुना जी) के मध्यवर्ती देश की महिमा वेद शास्त्रों में बहुशः सुनाई पड़ती है। धार्मिक दृष्टि से तो इसका सर्वोच्च आसन है ही, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसकी प्राचीनता सर्वोपरि है। महाभारत ग्रन्थ के अनुसार जिसे हम पाञ्चाल देश मानते कहते हैं और जिसकी राजधानी किसी समय काम्पिल्य * नगरी थी उसी का एक भाग वर्तमान एटा प्रान्त है इसी एटा प्रान्त में काली नदी से आध मील उत्तरमें "लालपुर" नामक एक छोटा सा ग्राम है हमारे परम पूज्य चरितनायक की जन्मभूमि यही ग्राम है। मैनपुरी प्रान्तका कुरावली नामक कस्बा लालपुरसे केवल तीन मील दक्षिण पूर्व है। इस ग्राम में कायस्थ (लाला) लोगों की पहले प्रधानता थी और उन्हीं का बसाया हुआ

---

* फर्रुखाबाद प्रान्त में गंगा जी के तीर पर अब भी कम्पिला, नामक ग्राम है कि जिसमें इस प्राचीन राजधानी के खंडहर विद्यमान हैं।

यह प्रतीत भी होता है कदाचित् इसीलिये लालपुर नाम इसका पड़ा।

२—विक्रमीयाब्द १९७४ से अनुमानतः दो सौ वर्ष पूर्व मेरापुर ग्राम (फर्रुखाबाद प्रान्त) के निवासी पं० गङ्गाराम जी घृतकौशिक मिश्र मनिकपुरामें कुछ सम्बन्ध (रिश्तेदारी) होने के कारण लालपुर में आकर बसे थे। मनिकपुरा ग्राम लालपुर से पश्चिम केवल एक मील पर है। मेरापुर में घृत-कौशिक मिश्रों का वृहत् कुटुम्ब १५०० मनुष्य अब भी विद्य-मान हैं। राजा के रामपुर में भी घृतकौशिक मिश्र अनेक बसते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में कई वार ब्रह्मर्षियोंकी वंश परम्परा के परिगणन में सिद्धि को प्राप्त हुए पुरुषों के लिये घृतकौशिक शब्द आया है। अतः घृतकौशिक यह गोत्र ऋषि का नाम है।

३—पूर्वोक्त लालपुर ग्राम के निवासी श्री पं० गङ्गाराम जी के वंशज पं० नेकराम जी हुए जो उनकी पांचवीं पीढ़ी में थे। ये विशेष पढ़े लिखे तो न थे परन्तु अच्छे बुद्धिमान् परोपकारार्थ चिकित्सा करने वाले, गणित (हिसाब) में प्रवीण और पञ्चायतों में प्रधान समझे जाते थे। आस पासके ग्रामों में उठने वाले विवादों के निर्णयार्थ वादी प्रतिवादी दोनों ही इन स्वनाम धन्य पं० नेकराम जी महोदय को सहर्ष पञ्च मानने को उद्यत रहते थे। यदि कोई नीचातिनीच चमार भंगी भी रोगी होता और आधीरात के समय ही कोई बु-लाने आता तो भी कुछ भेंट (फीस) लिये बिना ही उसी समय जाकर वे उसे देखते और औषध करते थे। स्पर्श दोष के निवारणार्थ रात्रि में ही स्नान भी कर लिया करते थे। परोपकार आप का ऐसा था कि चाहे स्वयं भूखे रहजांय पर क्षुधा पीड़ित को अन्न दे देवें। ऐसे धर्मात्मा, परमपरो-पकारी, शान्तिप्रिय, क्षमाशील सदाचार—परायण, पर दुःख

भञ्जन, सज्जनरंजन, न्याय, दया आदि की साक्षान्मूर्ति प्रातः स्मरणीय श्री पं० नेकराम शर्म्मा जी की धर्मपत्नी से उन के औरस पुत्र हमारे परमपूज्य चरित-नायक श्री पं० भीमसेन शर्मा जीका शुभ जन्म विक्रमीयाब्द १९११ की कार्त्तिक शुक्ला षष्ठमी को हुआ।

४—वि० १९११ के समय सन् १८५४ ई० था इसी सन् में भारतवर्षमें पहले पहल कलकत्ते से रेल चलनेका आरम्भ हुआ,

५—वि० १९१२ में हरिद्वार का कुम्भ बड़े समारोह के साथ हुआ। इस कुम्भ के दर्शनार्थ जगत् प्रसिद्ध श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी भी दक्षिण देश से चलकर पहले पहल आये थे। इन्हों ने इक्कीस वर्ष की आयु में संवत् १९०३ वि० में अपने पिता का घर जो कि काठियावाड़ में था छोड़ा था नर्मदा जी के किनारे स्वा० पूर्णानन्द सरस्वती से इन्हों ने संन्यास ग्रहण किया, जिस समय हमारे परमपूज्य चरितनायक का शुभ जन्म हुआ तो स्वा० जी श्री नर्मदा जी के तट पर विचर रहे थे। उस समय यह कौन कह सकता था कि भारतवर्ष में जो धर्म सम्बन्धी "विप्लव" होने वाला है उसमें इन दोनों महान् आत्माओं को अपनी २ रंगभूमियों में क्या २ कार्य हाथों में लेकर आश्चर्य जनक लीलाएं करनी होंगी। उस समय ये बातें दैव के गर्भ में थीं और कोई मनुष्य इन्हें कुछ भी न जान सकता था।

६—सं० १९१४ (सन् १८५७) में जो राजविद्रोह (गदर) हुआ उस में हमारे पूज्य चरित नायक केवल तीन वर्ष के थे। आप को अन्त तक उस समय की किन्हीं २ घटनाओं का स्मरण यथावत् बना रहा। इसी समय आप पर एक दारुण विपत्ति यह आई कि आपकी श्री माता जी का स्वर्गवास होगया। अहह! माता यह शब्द ही कैसे स्वर्गीय भाव का द्योतक है। माता जैसी शान्ति तथा सुख प्रद

अध्यापक को, धमकाने का अवसर आपने कभी न मिलने दिया था। उक्त लालाजी के पास आप अनुमान से एक वर्ष तक उर्दू सीखते रहे। इसी बीचमें आपने दुर्जगौहर, खालक बारी, करीमा, महमदनामा आदि छोटी २ पुस्तकों का कुछ कुछ अंश कण्ठस्थ कर लिया था। जब उक्त लालाजी चले गये तो कुछ काल तक आप इधर उधर जो कोई उर्दू जानने वाला मिल जाता तो उससे पूछ २ कर कुछ २ पढ़ते रहे।

९—अनुमान से बारह वर्ष की अवस्था में आपका उपनयन (जनेऊ) संस्कार कराया गया। उसीके पश्चात् संस्कृत भाषा पढ़ाने का विचारारम्भ हुआ। लालपुर ग्राम इतना छोटा है कि वहां संस्कृत का कोई विद्वान् न था। आपके सहोदर चार भाई थे उनमें आपके मध्यम भ्राता पं० धर्मदत्त जी आपसे छै वर्ष बड़े थे, वे पहले से ही कुराचली आदि ग्रामान्तरोंमें जा २ कर संस्कृत व्याकरण में सारस्वत चन्द्रिका और ज्योतिष के ग्रन्थ पढ़ने लगे थे। पं० धर्मदत्त जी की यह बड़ी उत्कट इच्छा थी कि मैं संस्कृत विद्या पढ़ कर पूर्ण विद्वान् बनूं परन्तु दैवयोग से उनकी यह इच्छा पूर्ण न हुई यद्यपि आपके पिता जी की बाल्यावस्था में धन सम्पत्ति अच्छी थी तथापि काल पाकर तंगी आगई थी-कठिनाई से निर्वाह होते देख कर पं० धर्मदत्त जी ने पढ़ना छोड़कर कुछ द्रव्योपार्जन में चित्त लगाया तो भी मनमें कुछ न पढ़ पाने का दुःख बना रहा। अतः पं० धर्मदत्त जी ने अपने इन लघु भ्राता को संस्कृत पढ़ाने की विशेष रूप से चेष्टा की। प्रथम शीघ्रबोध, सत्यनारायण, कथादि कई पुस्तक तो स्वयं पढ़ाये तदनन्तर संस्कृत व्याकरण पढ़ानेकी चिन्ता करने लगे तो उन्हें एक नई पाठशाला का पता लगा।

१०—हरिद्वार के कुम्भ (सं० १९१२) से निवृत्त होकर स्वा० दयानन्द जी ने पहले तो उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध २

स्थानों की सैर की और ऋषिकेश, श्रीनगर, केदारघाट, रुद्र प्रयाग, केदारनाथ गुप्त काशी, गौरीकुण्ड भीमगोड़ा त्रियुगीनारायण तुङ्गनाथ, ओखीमठ, जोशीमठ, बद्रीनारायण, अलकनन्दा नदी, गोमुख, हिमालय आदि की यात्रा करते हुए वे चिल्किया घाट की राह से हिमालय से नीचे आये थे। रामपुर (नवाब की राजधानी), काशीपुर, द्रोणसागर, मुरादाबाद, सम्भल, गढ़मुक्तेश्वर, आदि में होते हुए वे फर्रुखाबाद में आ पहुंचे थे, फिर कानपुर, प्रयाग, मिरजापुर, विन्ध्याचल, वाराणसी (बनारस) चुनार आदि स्थानोंमें होते हुए वे संवत् १९१३ वि० में फिर नर्मदा नदी तीर जा पहुंचे। भारतीय राज्य विप्लव (गदर) का यही समय था। तीन वर्ष उन्होंने यहीं बिताये। फिर संवत् १९१७ वि० में उन्होंने मथुपुरी (मथुरा जी) में आकर स्वा० विरजानन्दजी से ढाई वर्ष तक संस्कृत व्याकरण पढ़ा। सं० १९२० वि०के वैशाख व्यतीत होने पर उन्होंने मथुराजी का निवास त्यागा। फिर वे आगरा, धौलपुर, ग्वालियर, करौली, जयपुर, होते हुए संवत् १९२३ वि० में पुष्कर तीर्थमें पहुंचे। वहां से लौटकर कृष्णगढ़ अजमेर आदि होते हुए फिर आगरे आये उन दिनों वहां वायसरायका दर्बार था कि जिसमें अनेक भारतीय नरेश एकत्रित हुये थे। इसी अवसर पर उन्होंने मथुरा जाकर निज गुरुदेवके पुनर्वार दर्शन किये थे। अब हरद्वारका द्वादश वार्षिक कुम्भ फिर पास आगया था। गुरु से आज्ञा लेकर स्वामी जी हरद्वार को फिर गये। काशी के स्वा० विशुद्धानन्द जी तथा अमृतसर के स्वा० आत्मस्वरूपजी आदि बड़े २ विद्वानोंके साथ वहां उनका संस्कृत में संभाषण हुआ।

११—हमारे पूज्य चरित नायक इधर १३-१४ वर्ष ही के थे और घरसे बाहर नहीं निकले थे कि उधर स्वामी जी ने

सं० १९२४ के इस कुम्भमें देशोपमतिका विचित्र मर्म रोपा, श्री भागीरथी जी के तीर पर विचरते हुए और कनखल, लंढौरा, शुकताल, परीक्षितगढ़, गढ़मुक्तेश्वर आदि स्थानोंमें होते हुये वे कर्णवास ग्राममें भी आये। यह ग्राम 'भृगुक्षेत्र' के अन्तर्गत है और पाण्डुपुत्र कर्ण ने परशुराम जी से, इसी स्थल पर अस्त्र-विद्या सीखी थी। इसी कारण कर्णवास 'कर्णक्षेत्र' के नामसे भी प्रसिद्ध हुआ है इस क्षुद्र ग्रन्थकार की जन्मभूमि भी यही है। हमारे परम पूज्य चरित नायक ने भी आगे चलकर जब कि आपकी आयु पचास वर्षकी हो गई थी, कुछ मास यहां निरन्तर रहकर सपरिवार निवास भी किया था।

१२—कर्णवास से चलकर स्वा० जी रामघाट, शूकरक्षेत्र (सोरों) काम्पिल्य आदिमें होते हुये फर्रुखाबाद नगर में पहुंचे। इसी समय स्वा० जी के उपदेश से सेठ निर्भयराम जी मारवाड़ी ने एक संस्कृत पाठशाला उक्त नगर में खोली थी। इस पाठशाला को चले केवल दो ही वर्ष हुये थे कि इसका नाम दूर २ तक हो गया था। इसकी जैसी व्याकरण की सरल परिपाटी दूर २ तक कहीं न थी। छात्रों को संस्कृत में शीघ्रबोध कराये जाने के अतिरिक्त इसमें उनके ब्रह्मचर्य पालन तथा सन्ध्या तर्पण आदि कर्मकाण्ड कराये जाने पर भी बड़ा बल व ध्यान दिया जाता था वस्तुतः उस समय अन्यत्र इसके जैसी संस्कृत की आदर्श शिक्षा कहीं न थी। स्वा० विरजानन्द जी ने जिस आर्ष परिपाटी पर विशेष बल दिया था इस पाठशालामें व्याकरणके पठन पाठन का वही क्रम रक्खा गया था।

१३—जब पं० धर्मदत्त जी के कानों तक इस पा० शा०की ख्याति पहुंची तो उन्होंने इसी पा० शा०में आप को भरती करना चाहा। इस समय आप की अवस्था भी सोलह वर्ष

की हो चुकी थी। सत्रहवें वर्ष के आरम्भ होने पर आप घर से निकलकर फर्रुखाबाद में पहुंचे। यह दैवकृत संयोग ही था कि आप इसी स्वा० दयानन्द जीकी संस्थापित पाठशालामें भरती हुए। उस समय विक्रमीय सं० १९२९ का प्रारम्भ था, इसी संवत् में इस चरित लेखकका जन्म हुआ था।

१४—आज सं० १९७५ वि० में इस उक्त घटनाको हुए पैंतालीस वर्ष व्यतीत हो गये। वर्त्तमान आर्यसमाजका उस समय स्वप्न में भी पता न था। मृतपितरों के उद्देश्य से स्वा० जी उस समय प्रतिदिन सब विद्यार्थियों से तर्पण करवाते थे तथा मृतक श्राद्धमें पिण्डदान आदि मानते और कराते थे। उन्हीं दिनों पार्वण श्राद्ध की एक पद्धति भी स्वा० जी ने पृथक् छपाई थी अनेक लोगों के और स्वयं हमारे परम माननीय चरितनायक के पास भी बहुत वर्षों तक वह पद्धति विद्यमान रही थी।

१५—सब विद्यार्थियों के लिये स्वा० द० जीने यह नियम भी किया था कि सूर्योदयसे पहिले उठ कर शौच स्नान कर के सब लोग संध्या करें। सूर्योदय होने तक सूर्याभिमुख खड़े हो कर गायत्री का जप सब विद्यार्थी किया करें। सूर्य के उदय होते ही सूर्य देवता को अर्घ्य दें, उपस्थान करें और संध्योपासन समाप्त करके पढ़ें। स्वामी दयानन्द जी ने महाभारत के भीष्मपर्वान्तर्गत अध्याय तेईस में जो 'देवी, का एक स्तोत्र है उसे सब विद्यार्थियों को पाठ करनेके लिये बतलाया था। हमारे पूज्य चरित नायक ने भी उसी समय उसे याद किया था और स्नान के पीछे सदैव उसका पाठ किया करते थे।

१६—इन्हीं दिनोंकी बात है कि जिस समय हमारे चरित नायक फर्रुखाबाद में विद्याध्ययन कर रहे थे कि एक दिन वहीं के किसी सेठ ने फर्रुखाबाद के समस्त विद्यार्थियों तथा

अध्यापकों का निमन्त्रण किया, सेठ निर्भयराम जी की पाठशाला के भी समस्त छात्र निमन्त्रित किये गये थे इससे हमारे चरितनायक भी वहां पहुंचे, कुछ लोगोंने यह इच्छा प्रकट की कि हम छात्रों का संस्कृत भाषण सुनें, इस पर अपने गुरु श्री पं० उदय प्रकाश जी की आज्ञा से हमारे चरित नायक एक अन्य पाठशालाके छात्रसे संस्कृतमें शास्त्रार्थ करने लगे। शास्त्रार्थका विषय था कि शब्द नित्य है या अनित्य, हमारे चरितनायक ने महाभाष्य के प्रमाणों से प्रतिपक्षी के वक्तव्य का निराकरण किया प्रतिपक्षी छात्र के भाषणकी युक्तियोंको निर्बल समझकर प्रतिपक्षी छात्र के अध्यापक महाशय स्वयं बोलने लगे, हमारे चरितनायक ने उनकी युक्तियों का भी अच्छा निराकरण किया। प्रसङ्गवश प्रतिपक्षी पण्डित महाशय ने कहा कि "निमित्ते सप्तमी क्वापि दृश्यते" हमारे चरितनायक ने उसी समय उत्तर दिया कि हां (क्ङिति च) इस सूत्र में निमित्तमें सप्तमी विभक्ति विद्यमान है। इसे सुनकर उन अध्यापक महाशय को चुप हो जाना पड़ा, इस शास्त्रार्थ से उस समय फर्रुखाबाद में हमारे चरितनायक की प्रशंसा सर्वत्र फैल गई। परिणाम यह हुआ कि उन अध्यापक महाशय को जभी विद्यार्थी लोग देखते तभी उनको चिढ़ाने के लिये आपस में कहने लगते कि " निमित्ते सप्तमी क्वापि दृश्यते " अन्तमें उन अध्यापकने बाहर निकलना बन्द कर दिया पर हमारे चरितनायकने जब यह वृतान्त सुना तो उन विद्यार्थियों को ऐसा करने से निषेध कर दिया।

१७—आपने उक्त पाठशाला में जाकर केवल सात महीने में चार सहस्र (४ हजार) सूत्र-मूल अष्टाध्यायी का पाठ और अर्थ कण्ठस्थ कर लिया था इस से भी आपके जन्मान्तरीय शुद्ध संस्कार होने की विशेषता स्पष्ट सिद्ध है।

१८—विक्रमीय सं० १९३१ में आपको पा० शा० में पढ़ते तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। इन तीन वर्षों में उसी पा० शा० के व्याकरण पढ़े हुए पं० नीलाम्बर तथा श्री पं० नन्द-किशोर जी (पुठरी वाले) और मथुरा निवासी श्रीमान् पं० युगलकिशोर जी पा० शा० के अध्यापक रहे। इन्हीं तीन अ-ध्यापकों से तीन वर्षों में आपने अष्टाध्यायी द्विरावृत्ति प-र्यन्त पढ़ी थी इन में से अष्टाध्यायी का विशेष भाग आप ने श्री पं० युगलकिशोर जी से पढ़ा इसी संवत् १९३१ में किसी कारण से आपके अन्तिम अध्यापक (श्री पं० युगल-किशोर जी) पा० शा० से चले गये थे। अध्यापक के अभाव से पढ़ने में विघ्न होने लगा तब आपके सहपाठी तीन चार विद्यार्थियों ने सम्मति की कि कहीं अन्यत्र काशी जी आदि में चले जांय अब यहां पढ़ना नहीं होता। ज्यों ही सेठ नि-र्भयरामजी ने यह बात सुनी कि मथुरा जी से श्रीमान् विद्व-द्वर पं० उदयप्रकाश जी को बुला लिया। ये विद्या की तो साक्षात् मूर्त्ति थे ही किन्तु इनके ईश्वर भक्ति, वैराग्य आदि शुभ गुण भी प्रशंसनीय थे। संवत् १९३२ के आरम्भ होते ही पा० शा० में आगये थे। इनके पढ़ाने से उस समय के सभी विद्यार्थियों को ठीक २ बोध और पढ़ने का सन्तोष तथा आनन्द हुआ।

१—अष्टाध्यायी का स्वर वैदिक प्रकरण, २—महाभाष्य, ३—माघकाव्य, ४—सस्वर वेदपाठ, ५—पिंगल सूत्राष्टाध्यायी ६—चन्द्रालोक अलंकार इत्यादि कई पुस्तक एक ही वर्ष में उक्त पं० जी ने आपको पढ़ा दिये और सब में बोध करा दिया। आपको अन्तिम बोध वा अच्छा बोध व्याकरण आदि में उक्त पण्डित श्री उदयप्रकाश जी के पढ़ाने से ही हुआ था इस कारण आपके विद्या-गुरुओं में वे ही प्रधान थे, फर्रुखा-

बाद की इस पा० शा० में आपको सवा चार वर्ष का समय लग गया था कि जिसमें ऊपर लिखा पठन पाठन समाप्त हो गया था।

१९—जब सेठ निर्भयराम जी ने श्रीमान् पं० उदयप्रकाश जी को मथुरा जी से सं० १९३२ वि० में बुलाया था तो उक्त पं० जी ने पहले ही उनको स्पष्टतया लिख भेजा था कि यदि तुम हमें स्वेच्छानुकूल पढ़ाकर विद्यार्थियों को बोध करा देने के लिये बुलाओ तब तो हमको आपकी पा० शा० में अध्यापन के लिये आना स्वीकार है और यदि आप स्वा० दयानन्दजीके अङ्कुशमें कार्य चलाना चाहें और कहें कि जैसे२स्वा० द० जी कहें वैसे २ और उसी २ग्रन्थ को पढ़ाओ तो हम को आना स्वीकार कदापि नहीं है। यद्यपि सेठ निर्भयरामजी की स्वा० दयानन्द जी में बड़ी श्रद्धा थी परन्तु यह देखकर कि पा० शा० उजड़ रही है उक्त पं० जी को लिख भेजा कि पढ़ानेमें आपको स्वतन्त्रता है जैसा २ जो २ चाहें पढ़ाइये। इसपर उक्त पं० जी ने आकर काव्य कोष आदि भी पढ़ाये। परन्तु काव्य कोष का पढ़ाना स्वा० दयानन्दजी के सिद्धान्त से सर्वथा विरुद्ध था। जब किसी ने पत्र द्वारा स्वा० जी को लिखा कि यहां पा० शा० में आपके मन्तव्य के विरुद्ध कार्य होते हैं तो स्वामीजी ने सेठजी को लिख भेजा कि हमारी ओर से पा० शा० तोड़ दो, अब हम पा० शा० रखना नहीं चाहते। इतने हीमें श्री पं० उदयप्रकाश जी को भी एक वर्ष हो चुका था। वे एक ही वर्ष के लिये आये थे इस लिये वे मथुरा जी को चले गये पर तोभी सेठ निर्भयराम जी ने पा० शा० नहीं तोड़ी। पक्के वाले वैश्य जिस धर्म कार्य का आरम्भ करते हैं उसे जल्दी नहीं छोड़ते शास्त्र में कहा भी है कि:—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः, प्रारभ्य

विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः । विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥

वास्तव में इन वैश्यों में यह एक बहुत ही उत्तम गुण है। संवत् १९३२ के अन्त में जब श्री पं० उदयप्रकाश जी चले गये तो सेठ जी ने पं० ज्वालादत्त* जी को अध्यापक बना दिया। हमारे माननीय चरित नायक के सहपाठियों में ये प्रधान थे॥

२०—विक्रमाब्द १९३३ में हमारे पूज्यपाद चरितनायक का विवाह-संस्कार हुआ। वैशाख ज्येष्ठ दो महीने घर पर एतदर्थ आपको लग गये। आषाढ़में आप फिर फर्रुखाबादको लौट गये। वहां जाकर सुना कि ज्येष्ठ महीनेमें स्वा० दयानन्द भी फर्रुखाबाद आये थे। अब आपने काशीजी आदि में जाकर दर्शन शास्त्र पढ़नेकी इच्छाको पूर्ण करना चाहा। सेठ निर्भयराम जी ने ज्योंही यह बात सुनी तो आपको बुलाया और यह सम्मति दी कि स्वामी दयानन्दजी अभी यहां आये थे उन्हें एक पण्डित की आवश्यकता है पं० ज्वालादत्त जी से उन्होंने बहुत कुछ साथ चलनेको कहा परन्तु ये तो भी नहीं गये। यदि तुम दर्शन शास्त्र उनसे पढ़ना चाहोगे तो यह भी होता रहेगा। यदि वहां जाना स्वीकार हो तो एक पत्र संस्कृत में स्वा० जी के नाम लिख कर डाल दो। निदान आपने वैसाही किया आपके इस पत्र का निम्नलिखित आशय था।

---

* वैदिक यन्त्रालय के साथ इन पं० ज्वालादत्त जी का बहुत काल तक सम्बन्ध रहा। प्रयाग तथा अजमेर में ये उसके संशोधक तथा प्रबन्धकर्ता हो कर वर्षों तक रहे। यद्यपि ये आर्यसमाजियोंके मध्यमें रहा करते थे परन्तु अपने प्राचीन विचारों को इन्होंने कभी नहीं बदला था। अपने प्रतिमा पूजन आदि कृत्य भी इन्हों ने कभी नहीं छोड़े थे। स्वभावके ये अत्यन्त सरल तथा निर-भिमान थे परन्तु [illegible] से पूर्ण था॥ इनका शरीर संवत् १९६१ में शान्त होगया॥

"मैं दर्शन शास्त्र पढ़ना चाहता हूं, अष्टाध्यायी महाभाष्य पढ़ने से व्याकरण में मुझ को यथोचित बोध हो गया है और यदि आप लिखाना आदि कुछ काम मुझसे लेना चाहते हों तो मैं यह भी कर सकूंगा उसके लिये मेरी कुछ जीविका को आप उचित समझें नियत कर दीजिये परन्तु मेरा पढ़ना आप के पास हो सके यही मेरा विचार प्रधान है।"

स्वा० जी काशी जी में ठहरे हुये थे यह पत्र वहीं पहुंचा स्वा० जी ने इसका उत्तर शीघ्र ही अपने हाथ से लिखकर भाषा में दिया। इसका मुख्य आशय यही था कि तुम शीघ्र ही हमारे पास को चले आओ। दर्शन ग्रन्थों में से एकवार हम किसी ग्रन्थ का पाठ तुम को पढ़ा दिया करेंगे और शेष ४।५ घंटे लिखाया करेंगे उस काम का तुम को आठ रुपये मासिक वेतन देंगे और भोजन वस्त्र का व्यय भी सब तुमको मिलेगा। इस पत्र के आते ही आपने शीघ्र काशी में पहुंचने की तैयारी की। फर्रुखाबाद से कानपुर तक तो आप एक्के ताँगा में गये फिर वहां से रेल में बैठ कर काशी जी आ पहुंचे।

द्वितीय प्रकरण ।

यस्तु सञ्चरते देशान्, यस्तु सेवेत पण्डितान् ।
तस्य विस्तारिता बुद्धि-स्तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥

स्वामी दयानन्दजी का साहचर्य ।

[सं० १९३३–१९४०]

१–संवत् १९२४ में हरद्वार की परम पुनीत तथा सुरम्य स्थली में बैठकर भारतवर्षकी कल्याण बुद्धि से जो निजी विचार स्वा० दयानन्द जीने अपने मनमें स्थिर किये थे तदनुसार उन्होंने छे वर्ष तक बड़े उत्साहसे कार्य किया तथा इस बीच में उनकी तपश्चर्या भी निर्विघ्न चलती रही, सदैव देववाणी ही बोलते थे, संस्कृत विद्या के प्रचारार्थ फर्रुखाबाद की भांति मिरजापुर आदि नगरों में पाठशाला खुलवाते रहे। परन्तु १९३० वि०में बहुत बड़ा परिवर्त्तन उनके विचारों में होगया। घूमते २ ज्योंही वे कलकत्ते पहुंचे और कई मास तक वहीं जम कर रहे तो ब्राह्मसमाज के नेता बा० केशव चन्द्रसेन के साथ उनका अतिशय सम्पर्क होगया। उनकी सम्मतिको महत्व देकर ही स्वा०जीने संस्कृत वाणीका बोलना त्याग दिया,पाठशालाओंको तोड़ने लगे और उनका संचित द्रव्य वेदभाष्य आदि कार्योंमें लगाने लगे। यद्यपि स्वामी दयानन्द जी का उपदिष्ट सन्ध्या तर्पण आदि नित्य कर्म उस समय भी गृह्यसूत्र वा स्मृति आदि में लिखे विधान के अनुकूल न था तथापि श्रद्धा और तत्परता के साथ धर्मबुद्धि से लोग उसे करते थे इस कारण पीछे स्वा० द०जी के पलटा खाने की दशा की अपेक्षा उससे पूर्व की दशा धर्म प्रचार के लिये उपयोगिनी अवश्य थी। उस समय तक मनुस्मृति को

स्वामी जी सर्वथा व सर्वांश में प्रमाण मानते थे उसमें मक्षिप्त और वेदविरुद्ध आदिका कुछ भी सङ्का नहीं लगाया जाता था। महाभारत और वाल्मीकीय रामायण भी उन्हें प्रमाण थीं उस समय उनके खण्डनका मुख्य लक्ष्य श्रीमद्भागवत पर ही था। कहते हैं कि प्रज्ञा-चक्षु-दंडी श्री स्वा० विरजानन्द जी जब मथुरा जी में रहते हुए पा० शा० पढ़ाया करते थे तो एकबार वैष्णव सम्प्रदाय के पण्डितों से उनका शास्त्रार्थ हुआ था। उस शास्त्रार्थ में लोगों ने दण्डी जी की पराजय प्रसिद्ध की थी। पर किस का सत्य था यह हम ठीक २ नहीं जानते परन्तु कभी ऐसा भी हो जाता है कि सत्य पक्ष वाला भी दब जाता है पर इतने से उसका पक्ष असत्य नहीं हो जाता। परिणाम यह हुआ कि इस पराजय के अपवाद से दंडीजी के मनमें वैष्णव-सम्प्रदाय पर प्रबल क्षोभ उत्पन्न हो गया था। स्वा० दयानन्द जी जब व्याकरण समाप्त करके चलने लगे तो दंडी जी ने गुरु दक्षिणा में उनसे वैष्णवों के सम्प्रदायी प्रधान ग्रन्थ श्रीमद् भागवत के खण्डन की प्रतिज्ञा कराई इस कारण स्वा० द० जी का भी द्वेष वैष्णव-सम्प्रदाय से हुआ।

उक्त दंडीजी संवत् १९२५ में ही ब्रह्मपद लीन हो गये थे। अष्टाध्यायी महाभाष्य केवल इन्हीं दो व्याकरणके ग्रन्थों का पठन पाठन संसार में प्रचलित हो यही आपकी अनन्य इच्छा तथा चेष्टा रहा करती थी। वे अपने को महर्षि-पाणिनि का अवतार भी कहा करते थे। वास्तव में इनका यह विचार कि अष्टाध्यायी महाभाष्यको छोड़ अन्य संस्कृत व्याकरण का पठन पाठन सर्वथा उठा दिया जाय सर्वोत्तम था और है क्योंकि वैदिक साहित्य का ज्ञान इनके पढ़े बिना काभी होना सम्भव नहीं है। यदि हमें वेदों का ज्ञान प्राप्त

करना है तो इन दोनों ग्रन्थों के प्रचार का बीड़ा तन मन धन तीनों से उठा लेना चाहिये। आ० स० ने इस विषय में अबतक जैसा चाहिये वैसा ध्यान नहीं दिया अब सनातनधर्म तथा आ० स० दोनों की सम्मिलित शक्ति इस कार्य में लग जानी चाहिये।

२—हमारे महामान्य चरित नायक अनुमानतः सवाचार वर्ष तक फर्रुखाबादकी पा० शा० में पढ़ते रहे और स्वा० द० इस बीचमें तीन चार बार इस पा० शा० में आये परन्तु उस समय उनसे आपका कोई विशेष परिचय नहीं हुआ था। सामान्यतया दूर से ही प्रणाम आदि कर लिया करते थे क्यों कि तबतक ‘नमस्ते„ का भी प्रादुर्भाव नहीं हुआ था पहिले पहल स्वा० जी को हमारे मान्यवर चरितनायक जी ने जब देखा तो जाड़े के दिन थे परन्तु उनके शरीर पर एक लंगोटी को छोड़ कोई वस्त्र न था। एक कोठरी में धान का पलाल (प्याल) रात को सोते समय ऊपर नीचे ओढ़ बिछा लेते थे। द्वितीय बार कुछ चोगादि पहन कर आये। तीसरी बार मुण्डा जूता और अच्छे २ कपड़े धारण किये हुए, दीख पड़े।

३—संवत् १९३२ में श्राद्ध तर्पण सूर्यार्घ्य आदि जो कुछ पहलेसे स्वा०जी मानते आते थे उसे सर्वथा लौट दिया, उन्हों ने इसी वर्ष संसार में पहले पहल आर्यसमाज की स्थापना बंबई नगरी में की थी। वर्त्तमान आ० स० की जड़ जमाते ही स्वा० जी ने मानों समस्त देवता पितरों को एक साथ तिलाञ्जलि देदी। जिस संस्था ने जन्म लेते ही स्वा० जी जैसे महानुभावों का आस्तिक्य हरण कर लिया भला फिर आज कल के हमारे अर्द्ध-शिथिल सामाजिक भाई सनातन मर्यादा को उल्लंघन कर जांय तो इसमें कहा आश्चर्य कौन सा है। इस में सन्देह नहीं कि मूर्त्तिपूजन द्वारा देव पितरोंका पूजन स्वा०

को पहले भी नहीं मानते थे परन्तु श्रुति स्मृति में लिखे देव पितरोंको स्वा० जी निर्विकल्प मानते थे। भेद केवल इतना ही था कि परोक्ष देवों और पितरोंका अस्तित्व स्वीकार करते हुए वे उनका पूजन हव्य कव्य द्वारा अर्थात् होम जप पाठ और श्राद्ध तर्पणादि द्वारा आवश्यक बताते थे। वि० १९३२ के आरम्भमें पहले पहिल उनकी घोषणा इस प्रकार निकली कि परोक्ष देवता कोई नहीं हैं, होम करना वायु आदि की शुद्धि के लिये है तथा जीवित मनुष्यों का आदर सत्कार करना ही श्राद्ध-तर्पण कर्म है इत्यादि।

४-जब काशीजी में सं० १९३३ में हमारे पूज्यपाद चरित नायक पहुंचे, और स्वा० जी के पास रहने लगे, तो उन दिनों स्वा०जी वेदभाष्य के कार्यमें संलग्न थे और चारों संहिताओं में से वेद मन्त्रों की प्रतीकें लिख लिखा कर तथा ब्राह्मण ग्रन्थ और निरुक्त आदि कई ग्रन्थोंका सूचीपत्र बना रहे थे। आपको भी उन्होंने आज्ञा दी कि तुम भी धातुपाठ और उणादि पाठ का सूची प्रकार आदि क्रम से बनाओ तदनुसार आपने भी वैसा ही किया।

५-स्वा० जी ने कभी गुरुमुखसे पिङ्गल तथा अलङ्कार विषय को नहीं पढ़ा था परन्तु वेदों के भाष्य में इनकी बड़ी आवश्यकता थी अतः स्वा० जी ने पहले पहल उक्त दोनों विषय हमारे माननीय चरित नायक से ही सीखे थे। शुद्ध भाषा लिखनी दोनों ही को न आती थी अतः दोनोंने भाषा भास्कर नामक हिन्दी व्याकरण का अध्ययन साथ २ किया।

६-इसके पीछे स्वा० जी ने अपना भ्रमण आरम्भ किया सो काशी जी से चल कर पहले जौनपुर पहुंचे। भाद्रपद का महीना था वहां गोमती जी के तट पर छै सात दिन रह कर अयोध्या-पुरी को चल दिये और वहां सरजू बागमें जो चौ०

गुरुचरण लाल मिर्ज़ापुर वालोंका मन्दिर तथा पाठशाला थी उसी में ठहरे।

७-इसी उक्त मन्दिर के सम्बन्ध में एक अद्भुत और सत्य घटना का सम्बन्ध है प्रसङ्गवश उसे यहां लिखते हैं। खुर्जा (बुलन्दशहर) में सेठ नत्थीमल जी बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। उन्हें स्वर्गवासी हुए केवल चार वर्ष ही हुए होंगे। उनके संस्थापित विद्यालयमें श्रीयुत पं० चण्डीप्रसाद जी शास्त्री इस समय अध्यापक हैं। ये व्याकरण आदि शास्त्रों में बड़े पारंगत हैं। इन्होंने अयोध्या पुरी की सरजू बाग की पा० शा० में ही अध्ययन किया था। उनकी निज नेत्रों की देखी घटना है कि जब चौ० गुरुचरणलाल की वृद्ध माता से लोगों ने कहा कि तुम्हारा पुत्र देवताओं को नहीं मानता और नास्तिक हो गया है, अवतार, तीर्थ, श्राद्ध, देवपूजादि को बुरा समझता है। इसपर चौ० गुरुचरणलाल की माताने कई दिन तक अन्न छोड़ दिया था और आग्रह करने लगी थीं कि यदि सरजू बाग की पा० शा० में ठाकुर द्वारा न बना तो मैं मर जाऊंगी। जब यह वृत्तान्त उक्त चौधरी जी ने स्वा० जी से कहा तो स्वा० जी ने आज्ञा दी कि यह पा० शा० है यहां ब्रह्मचारी छात्र पढ़ेंगे इस से राधा सहित कृष्ण की प्रतिमा नहीं रखनी चाहिये किन्तु केवल बालब्रह्मचारी कृष्ण भगवान्‌का प्रतिमा स्थापित की जाय। निदान वैसा ही हुआ और वहां उसी समय से लेकर अबतक बाल्यावस्था के ब्रह्मचारी कृष्ण भगवान् की मूर्त्ति का पूजन हो रहा है। इसी बात को प्रकारान्तर से हम यों कह सकते हैं कि स्वा० दयानन्द जी की प्रेरणा से स्थापित प्रतिमा पूजन का विलक्षण स्वरूप इस समय भी विद्यमान है। इससे यह भी सिद्ध है कि स्वा० दयानन्द जी को प्रतिमा-पूजन से वैसी विरुद्धता

न थी होती कि प्रायः आर्य सामाजिक लोग जान रहे हैं। ह-मारे इस कथन की पुष्टि में सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १४ का निम्नलिखित एक वाक्य भी है:—

" हिन्दू लोग भी जड़ मूर्त्ति को ईश्वर नहीं मानते, किन्तु मूर्त्तिद्वारा चेतन ईश्वर की पूजा भक्ति करते हैं।"

८—सरजू बागके इसी मन्दिर के एक ओर स्वा० जी को ठहरनेका स्थान मिला था। पं० गुलचरण लाल जी स्वा० के पुराने प्रेमी थे क्योंकि मिर्जापुरमें उन्होंने एक पा०शा० स्वा० जी की इच्छानुसार स्थापितकी थी।

९—सं० १९३३ भाद्रपदकी अमावस्याको इसी सरजू बागमें ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के लिखनेका आरम्भ हुआ। उसी दिन से स्वा० जी ने हमारे मान्यास्पद चरितनायकको न्याय दर्शन के चार पांच सूत्र नित्य पढ़ाने भी आरम्भ किये थे। लेख कार्य का क्रम यह था कि पहले स्वा० जी संस्कृत बोलते जाते थे और हमारे चरितनायक उनके समीप ही बैठे २ वैसाही लिखते जाते थे। पीछे स्वयं स्वा० जी उसको शोधते थे तब फिर प्रतिलिपि (नक़ल) होती थी।

१०—सरजू बाग में रहते समय एक दिन हमारे चरित नायक छात्रावस्था के कण्ठस्थ किये हुए देवीस्तोत्रका पाठ स्नान के पीछे कर रहे थे कि स्वामी जी भी उसी समय दैव योगसे लोटा लेकर शौचार्थ अपने निवासस्थलसे बाहर आये और देवीस्तोत्रका पाठ सुनकर कहने लगे कि अरे भीमसेन यह क्या करता है? आपने उत्तर दिया कि देवीस्तोत्र का पाठ करता हूं। फिर वे बोले कि अरे यह तो वेदविरुद्ध पोपलीला है। आप बोले कि यह तो आपका ही बताया हुआ, महाभारत का देवीस्तोत्र है तो यह वेदविरुद्ध कैसे होगया? तब स्वामीजी बोले कि हमने यों ही बता दिया

या महाभारत भी ठीक नहीं है। अन्तमें आपको यही कहना पड़ा कि "जैसा आप कहें सो ठीक है।"

११—अयोध्यापुरी में स्वा० जी एक महीना रहे, पीछे लखनऊ होकर पश्चिम को चल दिये। इन दिनों एक बाबू भी अंगरेजी पढ़ा उनके पास रहता था कि जिससे अंगरेजीके अक्षर भी वे सीखते थे और उनका विचार था कि कुछ अंगरेजी पढ़जायं, और इस देशमें घूम लें तो फिर द्वीपान्तर (विलायत) में उपदेश को जांयगे । लिखा पढ़ी का काम बढ़ जाने से अयोध्या जी में ही आपका न्याय—दर्शन का पढ़ना छूट गया,था इस भांति हमारे चरित्रनायकका स्वामी जी से एक महीना भी पढ़ना न हुआ।

१२—बरेली, बदायूं, अलीगढ़ आदि स्थानों में होते हुए जलेसर वाले ठा० मुकुन्दसिंह जी को साथ लेकर स्वामी जी सं० १९३४ (१८७७) के दिल्लीदरबार में जा पहुंचे ।

१३—अनेक भारतीय नरेश उस समय दिल्ली आये थे और इन्दौर महाराज से स्वामी जी का कुछ पूर्वपरिचय भी था अतः स्वामीजी ने उनको एक पत्र लिखा था कि अपने डेरे पर एक हमारा व्याख्यान कराकर अन्य राजाओंको श्रवण करा दो। परन्तु अवकाश न होने का कारण लिख कर उक्त इन्दौर महाराज ने उनकी बात को टाल दिया।

१४—कलकत्ते से बा० केशवचन्द्रसेन, लाहौर से बा० नवीनचन्द्रराय, लुधियाने से बा० कन्हैयालाल अलखधारी, और मुरादाबाद से मुन्शी इन्द्रमणि भी दिल्ली दर्बार में उपस्थित हुए थे भारतवर्ष में उस समय इन लोगोंकी गणना उच्च श्रेणी के विचारशील नेताओंमें थी। स्वामी जी ने इन सबको अपने स्थान पर एकत्रित करके कहा कि आप सब देश को सुधारने के लिये कटिबद्ध होजायं। यदि हम, सब मिलकर देश सुधार का कार्य करें तो बहुत अच्छा हो इस

लिये आप पहले आपस में एक सम्मति कर लें। बा० केशव-चन्द्र बोले कि यदि आप वेद का मानना छोड़दें तो, अभी एक सम्मति हो सकती है। इसके विरुद्ध मुन्शी इन्द्रमणि जी का कथन था कि प्राचीन कालसे ऋषि महर्षि लोग जिस प्रकार वेदों को मानते आये हैं वैसा आप भी मानिये आप की कल्पनायें निर्मूल होने से कभी न चलेंगी। सृष्टिके आरम्भ में ब्रह्मा जी द्वारा वेद प्रकट हुये थे यही सर्वशास्त्र सम्मत सिद्धान्त है। ऐसे २ अटल सिद्धान्तों को भी आप उलटते हैं सो ठीक नहीं है। मुन्शी इन्द्रमणि जी दिल्ली दरबार में आने से पहिले भी जब २ स्वामीजी से मिले तो इन्हीं बातों को सुझाते समझाते रहे परन्तु स्वामी जी ने उनकी बातों को कभी न माना। इस गोष्ठी का फल यह हुआ कि आपस में सम्मति न मिलने से विचार-वैषम्य ही बना रहा और सब अपने २ डेरों को चले गये।

१५-दिल्ली दर्बार से निवृत्त होकर स्वामी जी मेरठ होते हुए सहारनपुर पहुंचे। चान्दापुर जिला सहारनपुर में इसी समय एक मेला भी था मुन्शी इन्द्रमणि जीकी सम्मति से यहां स्वामीजी ने ईसाई व मुसलमानोंसे शास्त्रार्थ किया चांदापुर से लौटकर एक या दो महीने तक स्वामी जी ने शिर में पट्टे रखाये थे। मस्तकके ऊपर अर्द्ध चन्द्राकार बाल गुच्छे भी छिदवाया करते थे। परन्तु जब पञ्जाब की यात्रा आरम्भ की तो फिर शिर का मुण्डन कराने लगे थे।

१६-सहारनपुर से चलकर स्वा० जी पहिले लुधियाने में उतरे। यहां वे कन्हैयालाल (अलखधारी) के अतिथि बने। जब भोजनका प्रबन्ध उन्होंने किया, तो स्वामीजी ने कहा कि डेढ़ रु० प्रतिदिन हमारे रसोइयाको देदिया करो रसोइयाके भिन्न जो मनुष्य साथ थे उनको वे भोजन नहीं देते थे परन्तु दाम एक

के नामसे लेते थे। केवल आठ आने प्रतिदिनका भोजन व्यय होता था शेष एक रुपया इस भांति बचा लेते थे। स्वा० जी प्रायः ऐसी चेष्टा किया करते थे कि जिससे भोजन व्ययार्थ रोकड़ (नक़द) रुपया आ जावे परन्तु यदि दैवयोगसे कभी आटा दाल आदि आ जाता था तो पास रहने वालों को मूल्य पर वह सामान दिया जाता था। जब कोई पुस्तक वेद भाष्य आदि का रुपया देने को लाता था तब स्वामी जी अपने साथ रहने वालों में से जो कोई मनुष्य पास होता था उसे रुपया दिलाते थे फिर जब बाहरी मनुष्य चले जाते तो झट उससे रुपया ले लेते और कहते कि लाओ हमारा वेग, बस गिन सम्हाल कर उसमें रख देते थे। जब किसी नौकर को वेतन देना होता था तो जिस ग्राहक पर वेदभाष्यादि का रुपया चढ़ा रहता था उससे नौकर को वेतन देने का बहाना करके मांगते थे। यदि कभी अपने पास से ही देना पड़ता तो अकेले कोठरी में जाते और मैलें २ रुपये छांट कर नौकर को लाते और अच्छे २ अपने पास रख लेते थे जनेऊ की भांति कण्ठमें डालने का एक चमड़ेका वेग भी (मनीवेग) स्वामी जी के पास रहता था। रुपया धरते निकालते समय स्वा० जी ऐसे धीरे २ सम्भालते थे कि जिसमें रुपये की खनखनाहट किसी को सुनाई न पड़ती थी।

१७—लुधियाने से चलकर लाहौर आदि पञ्जावके प्रसिद्ध २ नगरों में ढाई वर्ष का समय व्यतीत हो गया। संवत् १९३ वि० के वैशाख में हरद्वार का कुम्भ फिर हुवा कि जिस स्वा० जी भी सम्मिलित हुए। स्वा० जी के पास जो नौक रहा करते थे उन्हें वे प्रायः तंग रखते थे। अतः हरद्वार इनके पास कोई न रहा सब नौकर काम छोड़कर भाग गये जब रसोइया न रहा तो गृहस्थों के घरों से रोटी आ

लगीं जिन्हें वे खाने लगे थे। एक बंगाली बाबू ने कि जिनके घर में महतरानी पत्नी भाव से रहती थी, कहा कि स्वा० जी हमारे यहां आपका निमन्त्रण है। स्वा० जी ने इसे स्वीकार कर लिया ऐसा होने के थोड़ी देर पीछे एक मनुष्य ने स्वा० जी से आकर कहा कि इसके घर में महतरानी है आप इस के घर कदापि भोजन न करें *। स्वा० जी ने इस पर उसके यहां निषेध करा भेजा। बंगाली ने क्रुद्ध होकर स्वा० जीको उस बंगले से उठवा दिया कि जहां वे ठहरे हुए थे।

१८—हरद्वार से चलकर जब स्वा० जी देहरादून आये थे तो ऊपर लिखी घटना वहां पर हुई थी। देहरादूनसे सहारनपुर पहुंचे कि जहां अमेरिका निवासी अलकाट साहब कि जिनके साथ में मैडम ब्लैवस्टकी भी थीं स्वा० जी से मिलने आये। भारतवर्ष में थियोसोफिकल सोसाइटी नामक सभा का आरम्भ भी इसी समय हुआ क्योंकि अलकाट साहब के यहां आने से पहले इसका कभी यहां नाम भी न सुना गया था इस सभा में यद्यपि योगविद्या, गीता, मूर्त्तिपूजा आदि हिन्दूधर्म की बहुत सी बातें रूपान्तर से मानी जाती हैं तथापि वर्णाश्रम धर्म की जड़ पर गुप्त रूप से यह भी कुठाराघात करती है।

१९—अलकाट साहब के (सं० १९३६ में) भारतवर्ष में आने के पहले बम्बई निवासी एक आ० समाजी सज्जन के साथ उनका पत्र व्यवहार हुआ था उसी के द्वारा उन्हों ने

---

* नोट—स्वामी जी संन्यासी होकर भी भंगी चमार आदि अस्पृश्य जातियों के पकाये भोजन से कितना बचते थे परन्तु आज दिन इस सम्बन्ध में वर्त्तमान आ० स० की उच्छृंखलता आकाश से बातें करती जाती है। लोक तथा वेद से तो विरुद्ध ये बातें हैंही किन्तु ये स्वयं स्वा० जी के मन्तव्य के भी विघातक हैं।

भारतवर्ष में आ० समाज नामक संस्था के आरम्भ होने का वृत्तान्त सुना। अमेरिका निवासियोंने आ०स० को अपनाना चाहा और सब आ० समाजियोंको थियोसोफीकल सुसाइटी में सम्मिलित कर लेने की गुप्त इच्छा की। एतदर्थ स्वा० जी के साथ भी उनका पत्र व्यवहार होने लगा। वहां से अंगरेजी में पत्र आते थे और एक बाबू साहब उनका अनुवाद स्वा० जी के लिये किया करते थे कि जिसका नागरी में विस्तृत उत्तर स्वयं स्वामी जी लिखा करते थे। पीछे उसका अनुवाद अंगरेजी में होकर अमेरिका भेजा जाता था। इधर स्वा० जी भी यह समझ बैठे थे कि अमेरिका की थियोसोफिकल सोसाइटी भी आ० स० की एक शाखा बना चाहती है। इस पत्र व्यवहार का फल यह हुआ कि सहारनपुर में उक्त दोनो व्यक्तियां स्वा०द० जी से आकर मिलीं, यह सम्मिलन बड़ा विलक्षण था कि कोई किसी की भाषा न समझता था। एक बाबू दोनों ओर का आशय समझाया करता था। सहारनपुर में कई बातों की अनुकूलता न देखकर स्वा० जी मेरठ आये। यहां दो बंगले लिये गये थे जिनमें से एक में स्वा० जी उतरे और दूसरे में उक्त दोनों व्यक्तियां। अनुमान दश पन्द्रह दिन तक तो दुभाषिया द्वारा स्वा० जी की उनके साथ बात चीत होती रही। अधिकांश बातें योग विषय में हुईं। अन्त में अलकाट साहब व मैडम दोनों तो अन्य नगरों में घूमने लगे और स्वा० जी ने काशी जी की ओर जाने का विचार किया। मेरठ में पूना निवासिनी रमाबाई नामक एक संस्कृतज्ञ स्त्री भी स्वा० जी से कुछ दिन तक पढ़ती रही थीं। स्त्री शिक्षा पर उसने वहां व्याख्यान भी दिये थे। पीछे उसके साथ स्वा० जी की अनबन हो गई तो वह फिर दक्षिण को चली गई। सुनते हैं कि वहां जाकर उसने ईसाई

मतं ग्रहण कर लिया। सुना है कि यह यथार्थ में स्वामी जी के साथ विवाह करना चाहती थी परन्तु स्वा० जी ने इस बात को स्वीकार नहीं किया अतः वह निराश होकर उनके पास से चली गई।

२०—इसी अवसर पर (सं० १९२६ में) मुरादाबाद निवासी मुन्शी इन्द्रमणि जी पर मुसलमानों ने एक पुस्तक के लिये अभियोग (मुकद्दमा) चलाया था। इसके लिये स्वा० जी ने भी उस समय एक विज्ञापन निकाला था कि आर्यसमाजी लोग उक्त मुन्शी जी की धनसे सहायता करें। अनेक लोगों ने इसपर उक्त मुन्शी जी की सहायता की थी परन्तु मुकद्दमे की समाप्ति पर स्वामीजी ने उन से हिसाब मांगा और कहा कि जो कुछ बचा हो वह लौटा दो। इसपर मुन्शी जी ने उत्तर दिया कि हमने हिसाब तो कुछ नहीं लिखा और न आपने पहले हमसे ऐसा करने को कहा था। निदान इसी हिसाब के झगड़े में दोनों का वैमनस्य उत्पन्न हो गया।

२१—इसके पीछे स्वा० जी फिर मेरठ से दिल्ली पहुंचे। इन दिनों स्वा० जी हुक्का भी पीते थे। एक बढ़िया कली, पेचवां नगाली तथा चांदीकी मैनाल रखते थे। जब पञ्जाब में गये तो हुक्का पीना छोड़ दिया था और कली किसी को दे दी थी परन्तु चांदी की मैनाल अपने पास ही रख ली थी। दिल्ली में उसे एक दिन जब ढूंढने लगे तो न पाया। ठा० मुकुन्दसिंह जी रईस छलेसर ने एक कहार अपने यहां का स्वामी जी के साथ नौकर रख दिया था। इसी कहार के वेतन में से डेढ़ रुपया इस लिये काटा गया था कि उसी पर स्वा० जी ने चुरा लेने का सन्देह किया था। पीछे उस बिचारे को निकाल भी दिया गया। इस घटना के दो तीन

महीने पीछे एक दिन वही मौनाल एक झोले में पड़ी मिल गई। इस पर स्वा० जी ने केवल इतना ही किया कि पत्र द्वारा ठा० मुकुन्दसिंह जी को यह लिख भेजा कि उस कहार को डेढ़ रुपया दे दिया जावे।

२२—एक वार हमारे पूज्यपाद चरित नायक के भ्राता (पं० धर्मदत्त जी) आपसे मिलने गये। जब वे घर के लिये लौटने लगे तो स्वा० जी से वेतन मध्ये चढ़ाउ रुपये मांगे गये। स्वा० जी ने उत्तर में कहा कि रुपये अभी नहीं हैं हमारे पास जो दुशाले रक्खे हैं उनमें से एक ले जाओ और कासगंज के समीपवर्त्ती नदरई गांव के अमुक वाजपेयी जी को उसे दे देना उनसे रुपये मिल जांयगे। इधर उधर से भेंट में जो दुशाले आते थे, ये वे ही थे। इस प्रकार दुशाले कई वार वेंचे गये थे। स्वा० जी के पास सौ दो सौ रुपये प्रतिक्षण रहा करते थे परन्तु दुशाला वेंचने के लिये यह युक्ति की थी।

२३—इसी अवसर पर (सं० १९३६ में) स्वा० जी को संग्रहणी रोग हो गया। इसी दशामें वे दिल्ली से मुरादावाद पहुंचे तो वहां राजा जयकृष्णदास जी के कुंवरों की सम्मति से उनकी डाक्टरी दवाई हुई। एक दिन रोग और वढ़ गया तो उन्हों ने प्रतिज्ञा पूर्वक डाक्टरी दवाओं का परित्याग कर दिया। अब से आगे डाक्टरी दवाओं का निषेध सब के लिये करने लगे। स्वा० जी राजा साहव के यहां प्रायः डवल रोटी खाया करते थे कि जिसे एक गौड़ ब्राह्मण रसोइया अंगरेज़ी चाल से बनाया करता था। बिसकुट आदि अंगरेजी भोजन यही रसोइया राजासाहवके लिये वनाया करता था।

२४—स्वा० जी मुरादावाद से वरेली आये और लाला लक्ष्मीनारायण खजानची की कोठी में ठहरे। देशी दवा कर

रहे थे क्योंकि अभी तक रोग प्रारम्भ नहीं हुआ था। दैवयोग से एक दिन यहां स्वा० जी की कौपीन (लंगोटी) खो गई तो उक्त ला० जी की ओर से जो कहार नियत था उसे चोरी लगाई गई। वह बिचारा बड़ा दुःखित हुआ और कहने लगा कि इस कोठी में अस्सी सहस्र का सामान मेरी रक्षा में ला० जी ने सौंप रक्खा है आज लंगोटियों की चोरी का कलङ्क मेरे सिर धरा गया, ऐसा कहकर वह रोने लग गया। दैवयोग से चार दिन पीछे मूसे के घरों में लंगोटियां मिल गईं चांदीकी सौनाल की मिथ्या चोरीको अभी बहुत दिन नहीं हुए थे कि तत्काल वैसीही भूल स्वा० जीने फिर की, वास्तव में यह उनका स्वभाव ही था कि निर्दोष को दोष लगाने में किञ्चिन्मात्र भी संकोच न करते थे।

२५-इसके पीछे स्वा०जी कई नगरोंमें ठहरते हुये प्रयाग का पहुंचे। यहां एक बाबू ऐतरेय ब्राह्मण का अंगरेजी अनुवाद लेकर स्वा० जी के पास आये और शुनः शेप की कथा का समाधान पूंछने लगे। परन्तु इस विषय में स्वा० जी ने उन्हें सन्तोषजनक उत्तर कुछ भी न दिया।

२६-ऊपर जो अलकाट साहब का वर्णन हुआ है उस विषय में इतना और वक्तव्य शेष है कि लगभग दो वर्ष तक वे स्वा० जी से बीच २ में मिलते रहे और अपनी थियोसोफीकल सोसाइटी स्थापित करते रहे आ० स० को स्वा० जी सहित वे अपनेमें खींचना चाहते थे परन्तु स्वा० जी उन के मनोरथको समझ गये और एक विज्ञापन द्वारा उनसे सम्बन्ध विच्छेद कर दिया।

२७-प्रयाग से चलकर मिर्जापुर आदि में होते ठहरते हुये स्वामी जी काशी जी पहुंचे। लाजरस साहब के प्रेस में उन दिनों स्वा०जी के ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि पुस्तक

छपा करते थे उन्हों ने ही स्वामी जी के ठहरने को महा
राजा विजयनगर का आनन्दबाग मांग रक्खा था। यह
पहुंचकर हमारे मान्यास्पद चरित नायक ने लेखक का का
छोड़कर दर्शन शास्त्रों का पढ़ना आरम्भ कर दिया। इस
लिये स्वामी जी से पहले ही प्रतिज्ञा कराली थी कि काश
जी पहुंचकर हम कुछ दिन पढ़ेंगे। निदान वहां तीन वि
द्वानों से १—वेदान्त (ब्रह्ममीमांसा) २—पूर्व मीमांसा
३—न्यायदर्शन ये तीन शास्त्र पढ़ने आरम्भ किये। पुनः
श्री प० सीताराम शास्त्री जी से जो कि दर्भंगा की पाठशाल
में न्यायशास्त्रके परम प्रसिद्ध अध्यापक थे आपने न्यायशास्त्र
पढ़ा था। उक्त पं० जी का शरीर ५८ वर्षकी आयुमें भाद्रपद
कृ० ४ संवत् १९६४ वि० को शान्त हुआ।

२८—इन्हीं दिनों लक्ष्मीकुण्ड पर स्वा० जी ने अपना
"वैदिक यन्त्रालय" स्थापित किया। इसके लिये स्वा० जीको
मेनेजरका नाम लिखाने को कलक्टर सा० के सामने कचहरीमें
खड़ा होना पड़ा था।

२९—जिन दिनों हमारे चरित नायक महोदय पढ़ने में
निरत थे तो स्वा० जी ने दो नये लेखकों को रख लिया था
प्रेस खुलते ही संस्कृत वाक्यप्रबोध नामक पुस्तक पहले पहल
छपाया गया। स्वा० जी ने स्वयं बोल २ कर उक्त दोनों ले-
खकों के द्वारा ही इसकी रचना कराई थी। इस पुस्तक में
पचास साठ भयङ्कर अशुद्धियां ऐसी छप गईं कि जिन्हें एक
लघुकौमुदी पढ़ा विद्यार्थी भी जान सकता था। इस पुस्तक
के छपकर बाहर निकलते ही काशी की विद्वन्मण्डली ने
स्वा० जी का बड़ा उपहास किया और शास्त्रियाचार्य पण्डित
अम्बिकादत्त व्यासजी ने उसके खण्डनमें "अबोध निवारण"
नामक पुस्तक छपाया। स्वा० जी के वेदभाष्य तैयार होने के लिये

वर्ष पहले ही उक्त (भ्रमोच्छेदन निवारण) पुस्तक छपकर प्रकाशित हो चुका था परन्तु इसके उत्तर में स्वा० जी ने कभी अपनी लेखनी न उठाई तब तक प्रायः लोग स्वा० जी के सम्बन्ध में कहा करते थे कि ये संस्कृत के पूर्ण विद्वान् हैं, दोष केवल इतना ही बताया जाता था कि अवतार मूर्ति-पूजा आदि का खण्डन करते हैं। पहले पूर्णत्यागी रहकर संस्कृत ही बोलते रहे थे इससे भी स्वा० जी का गौरव देश भर में फैल गया था इन्हीं के आश्रय से प्रा० स० की भी बहुत बड़ी प्रतिष्ठा थी। परन्तु इस सारी प्रतिष्ठा पर 'भ्रमोच्छेदन निवारण, पुस्तक ने एक साथ पानी फेर दिया।

३०—जब काशी जी से स्वा० जी पश्चिम को चलने लगे तो एक सेठ की दुकान पर दो सहस्र मुद्रा जमा करदिये और उनसे कह दिया कि जब २ यह भीमसेन शर्मा रुपया लेने आवें तो इन्हें दे दिया करना। तत्कालीन प्रबन्ध कर्त्ता (मैनेजर) बा० बख्तावरसिंह का विश्वास न करके हमारे माननीय चरितनायक का स्वामीजी ने इतना अधिक विश्वास किया इसमें आपकी सत्यनिष्ठा ही मुख्य कारण थी।

३१—जब स्वा० जी काशी छोड़कर घूमते हुये आगरे पहुंचे तो इस अन्तर में हमारे चरितनायक महानुभाव भी अपनी जन्मभूमि में जा पहुंचे थे। काशी में स्वास्थ्य बिगड़ जाने से आप वहां से घर को चले आये थे। अब फिर स्वा० जी ने आपको आगरे ही बुला लिया। आगरे से आप उन के साथ जयपुर पहुंचे। जयपुर में स्वा० जी का न कोई व्याख्यान हुआ और न महाराज से साक्षात्कार ही हो सका।

३२—जयपुर से स्वा० जी अजमेर पहुंचे, वहां से छुट्टी लेकर हमारे पूज्यपाद चरितनायक ने निज जन्मभूमि आना चाहा। इस पर स्वा० जी रुष्ट हो गये तो आप मन को

आसन्नता में हों पर को छपे आये। वैदिक यन्त्रालय इस अन्तर में काशीजी से उठकर प्रयाग में आ गया था आगरा निवासी पं० सुन्दरलाल जी उन दिनों प्रयाग में ही थे और वैदिक यन्त्रालयके वे ही मैनेजर तथा सञ्चालक थे। स्वा० जी ने उनको लिख भेजा कि तुम वैदिक यन्त्रालय के संशोधन कार्य के लिये पं० भीमसेन शर्मा को प्रयाग बुला लो। इस पर आप प्रयाग जा पहुंचे और वैदिक यन्त्रालयमें कुछ दिन तक संशोधन कार्य करते रहे।

३३–प्रयागमें एक दिन आ० समाजका साप्ताहिक उत्सव हो रहा था उसमें पूर्वोक्त 'अबोधनिवारण, पुस्तक को लेकर एक मनुष्य आया और कहने लगा कि स्वा० दयानन्द जी वेदों के ज्ञाता नहीं हो सकते उन्हें साधारण संस्कृत का भी शुद्ध ज्ञान नहीं है। इसपर पं० सुन्दरलालजी बोले कि स्वा० जी अकथनीय सर्वज्ञ विद्वान् हैं उनसे ऐसी अशुद्धियां कदापि नहीं हो सकतीं। 'संस्कृत वाक्यप्रबोध, की अशुद्धियां जिनके दोष से हुई हैं वे पं० भीमसेन शर्मा हैं कि जो इस समय वह सामने बैठे हैं इस प्रकार उंगली से आपको बता दिया।

३४–इस पर हमारे पूज्य चरित–नायक को यह यथार्थ बात कह देनी पड़ी कि उक्त पुस्तकके छपते समय हमने उसे नहीं शोधा था किन्तु अकेले स्वामी जी ही उसे स्वयं देखा और शोधा करते थे। इसी कारण वह इतना अशुद्ध छप भी गया है। स्वामी जी सदैव अशुद्ध संस्कृत लिखाते थे परन्तु आप लिखते समय ही कह दिया करते थे कि ऐसा शब्द वा वाक्य अशुद्ध और ऐसा शुद्ध होगा। तब शुद्ध लिखा जाता था यद्यपि यह कथन सर्वथा ही सत्य था इसमें लेशमात्र भी असत्य न था परन्तु आ० समाजी भाइयों को इस पर बड़ा क्रोध हुआ कोई २ तो तत्काल कहने लगे कि इन पर मानहानिका अभियोग लगाना चाहिये। उसदिन की यह घटना

यथायत् लिखकर स्वा० द० जी के पास भेजी गई। उस समय वे शाहपुरा राजधानी मेवाड़ में ठहरे हुये थे। स्वामीजी ने वहांसे इसके उत्तर में केवल इतना ही लिख भेजा कि आपने (भी० श० ने) जो कुछ हमारे विषय में कहा है उसका बुरा मत मानो, काम चलाये जाओ। इसपर पं० सुन्दरलाल बोले कि पं० भीमसेन शर्माजी जब स्वयं स्वामीजी के सामने नहीं दबते तो पीछे क्योंकर दबेंगे ?।

३५—प्रयाग में कुछ काल रहने के उपरान्त हमारे पूज्य पाद परिवर्तनायक अपने घर होते हुए स्वामीजीके पास उदयपुर राजधानी पहुंचे। वहां स्वामी जी के विद्यार्थी दशा के परिचित दण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल जी मथुरा निवासी पहले से थे उन्होंने महाराणा सज्जनसिंह जीके सन्मुख स्वा० जी की बड़ी प्रशंसा की थी तो उन्होंने स्वामी जी को उदयपुर बुलवाया। स्वा० आत्मानन्द जी उन्हीं दिनों स्वामी जी के शिष्य हुये थे उदयपुर में स्वामी जी के कोठार की ताली उन्हीं के पास रहा करती थी।

३६—उदयपुर में तीन मनुष्यों को विधि पूर्वक स्वा० जी ने अपना शिष्य (चेला) किया था उनके कान में कुछ गुप्त मन्त्रोपदेश भी दिया था। उनमें प्रथम कोटि के शिष्य तो उक्त स्वा० आत्मानन्द जी थे। शेष दो स्वा० ईश्वरानन्द और स्वा० सहजानन्द नामक थे। स्वा० जी की मृत्युके पीछे कई वर्ष तक ये लोग जीवित रहे और आ० समाजमें थोड़ी बहुत इनकी प्रतिष्ठा भी कुछ दिन तक रही थी। इन में स्वा० आत्मानन्द जी ने अनेक बहाने कर २ के मृत्यु समय तक अनुमान से सात सहस्र मुद्रा जोड़े थे जिनमें से बहुत से रुपये तो एक ऐसी स्त्रीके हाथ रहे कि जो पहले पण्ययोषित् (वेश्या) थी और पिछे तक आत्मानन्द जी की गुप्त

सम्बन्ध भी था। दूसरे शिष्य स्वा० ईश्वरानन्द जी का कण्ठ कुछ अच्छा था परन्तु आचार विचार के मलीन थे। इनका स्वभाव खाने उड़ाने का था इस लिये धन सञ्चय उन्हों ने कुछ नहीं किया। हां आत्मानन्द जी की अपेक्षा ये साक्षर अधिक थे इस लिये जब आ० समाज के मिथ्या सिद्धान्तों का इन्हें पता लग गया तो ये सनातनधर्म में सम्मिलित हो गये और अनेक शास्त्रार्थों में आ० समाजियों को इन्हों ने परास्त किया। अन्त में कुछ लोग मुरादाबाद के पास किसी गांव में सभा का बहाना करके इन्हें ले गये, मार्ग में इन्हें लात घूंसों से ऐसा मारा कि ये बेसुध हो गये। जब वे वंचक लोग भाग गये तो बैलगाड़ी वाला उन्हें लौटाकर मुरादाबाद ले आया आठ दश दिन महा कष्ट भोगकर उनका शरीरान्त हो गया। कोई २ लोग कहते हैं कि किन्हीं आ० समाजियों ने तंग आकर उन्हें इस प्रकार कष्ट देकर मारा था।

२६–तीसरे शिष्य सहजानन्द थे उन में अहङ्कारकी मात्रा अधिक थी। दिन रात में स्वामी जी जितने पान खाते थे, ये उनसे तिगुने चबा डालते थे। स्वा० जी के देहान्त होने पर इन्हों ने प्रयाग के वकीलों से सम्मति भी ली थी कि स्वामी दयानन्द जी के हम शिष्य हैं उनका धन तथा वैदिक यन्त्रालय आदि सम्पत्ति हमें मिल सकती है वा नहीं? अदालत में दावा करने के लिये इन्हों ने एक अपना सहायक भी स्थिर करलिया था कि जो रुपया उठाने को उद्यत था।

२७–मेरठ में स्वामी दयानन्द जी ने अपना जो पहला प्रतिज्ञापत्र [वसीयत–नामा] लिखा था उसको रद्दी करके उदयपुरमें दूसरा लिखा गया। इस वार परोपकारिणी सभा को उन्हों ने अपनी मृत्यु के पीछे अपना स्थानापन्न नियत किया। अतः शेष, पुस्तक रुपया आदि सम्पत्ति स्वत्व का

उक्त सभा के अतिरिक्त अन्य किसी को न था। वकीलों ने स्वा० सहजानन्द को सम्मति दी कि तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा इसे सुनके येबड़े दुःखी हुए और कहने लगे कि हमने वृथा ही अपनी चोटी कटाई और हमें धोखा देकर धर्म-भ्रष्ट किया गया। निदान वे प्रायश्चित्त करके अपने परिवार वालों में जो कि विहार-प्रान्त में था जा मिले।

३८-इन तीन शिष्योंके अतिरिक्त एक रामानन्द ब्रह्मचारी नामक और भी था। वह फर्रुखाबाद में पढ़ा करता था और पहाड़ी ब्राह्मणका बालक था। इस की लेखनशक्ति कुछ अच्छी थी सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि आदि कई पुस्तकों को स्वामी जी ने स्वयं बोल २ कर इसी से लिखाया था। पांचवा एक शिष्य और था जो थोड़े दिन ही रहा उस का नाम चिदानन्द था। इन पिछले दोनों शिष्यों का नाम बहुत कम लोग जानते हैं।

३९-उदयपुर में स्वामी जी "सज्जनविलास" नामक बाग में ठहरे थे। लगभग दो महीने होने आगये परन्तु महाराणा साहब से साक्षात्कार नहीं हुआ, पश्चात् पण्ड्याजीके उद्योग से एक दिन महाराणा सज्जनसिंह जी स्वामी जी के पास आये और मिले; आगे प्रतिदिन सौ मनुष्य परिचर्या (अर्दली) में लेकर आते रहे। मनुस्मृति का राजधर्म, योगदर्शन तथा न्यायदर्शन का क्रमशः उपयोगी अंश स्वामी जी उक्त श्री महाराणा जी को प्रतिदिन सुनाया करते थे।

४०-एक दिन की वार्त्ता है कि जिस समय स्वामी जी न्यायदर्शन सुना रहे थे तो वर्णव्यवस्था-विषयक कुछ बातें वे मूल तथा भाष्यके विरुद्ध कहने लगे। इस पर आपने उन्हें सावधान करना चाहा तो कहने लगे कि हम इस का आशय तुम्हें फिर समझा देंगे अभी बीच में शङ्का समाधान छेड़ने से

सुनाने में विघ्न होगा। ऐसा कहने पर आप उस समय तो चुप हो रह गये परन्तु पीछे दूसरे दिन ब्रह्मचारी रामानन्द से जब आप इस की चर्चा एकान्त में कर रहे थे तो स्वामी जी भित्ति की ओट में खड़े होकर कुछ देर इन सब बातोंको सुनते रहे। पीछे अपने आसन पर पहुंच कर आपको अपने पास बुलवाया। उस समय निम्नलिखित संवाद दोनों में होने लगा।

स्वामी जी—तुम लोगों को इतना भी विचार नहीं कि कौन बात कहां कहनी चाहिये। हमारे अन्य मनुष्य रामानन्द आदि को भी हमारे मन्तव्य के विरुद्ध करने की चेष्टा करना यह भी तुम्हारा साधारण अपराध नहीं है। क्या तुम अब भी न समझोगे?

हमारे चरित-नायक—आप के सामने अपने भीतर का सत्य २ विचार हम आज इस लिये प्रकट कर देना उचित समझते हैं कि आप सत्य के लिये बड़ा बल देते हैं तो हमारे सत्य कहने पर भी आप अवश्य अप्रसन्न न होंगे। वह सत्य यह है कि आप पुरुषों के लिये कम से कम पचीस वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचारी रहना, विवाह आदि उत्सवों में वेश्यानृत्य न कराना इत्यादि का उपदेश करते हैं आप की इन बातों को हम निर्विकल्प अच्छी मानते हैं, परन्तु इस के साथ ही आप आर्ष-ग्रन्थोंका वास्तविक अर्थ छोड़ कर प्रायः मनमाना अनर्थ भी करते हैं। "सत्ये नास्ति भयं क्वचित्" इस सिद्धान्त के अनुसार यदि हमने महाराणा जी के सन्मुख ही सत्य को कह दिया तो इस में क्या अपराध हुआ रामानन्दको बहकाने की बुद्धि से हमने कुछ नहीं कहा जो कुछ कहा है धर्मानुसार ही कहा है क्योंकि सत्य साक्षात् धर्म है। आप ही कहें कि क्या यह हमारा कहना असत्य है?

स्वामी जी—हमें प्रतीत होता है कि तुम हमारे उपदेश को हितकारी होने पर भी नहीं मानोगे और न प्रचार करोगे?

आप—आपके सत्य उपदेश को हम अवश्य मानेंगे और उस का प्रचार भी करेंगे परन्तु किसी का भी असत्य उपदेश हितकारी कदापि नहीं हो सकता।

स्वामी जी—क्या तुम हमारे प्रतिनिधि (वकील) के समान भी हमारे उपदेश को नहीं फैलाओगे।

आप—जिसे हम मिथ्या समझते हैं उसी को वकीलों की भांति धन के लोभ से सच्चा सिद्ध करने का उद्योग हम कदापि न करेंगे। इसीलिये हम घर को चले जाना चाहते हैं। आप अपनी पुस्तक आदि सामग्री देख भाल लें।

स्वामी जी—तुम लोग हमारी सहायता से पढ़ लिखकर तैयार हुए। हमने सोचा था कि तुम लोगों से बहुत कार्य निकलेगा सो तुम लोग बड़े अयोग्य निकले।

आप—आपकी सहायता और उपकार को हम धर्मानुकूल कार्य करने के लिये अवश्य मानते हैं परन्तु यदि मिथ्या को आप हमसे सत्य कहलावेंगे तो ऐसा हमसे कदापि न होगा।

४१—इस घटना के पीछे कई मनुष्यों के द्वारा स्वामीजी ने आप को समझाया था कि घर न जाओ परन्तु आप उन के पास से उस समय घर को चले आये थे और कुछ दिन घर रहकर आपने एक पत्र स्वामी जी को लिखा और उन की कुशल पूछी। आपका यह पत्र पहुंचने पर स्वामी जी ने भी इसके उत्तर में उपालम्भ देते हुये लिखा कि शीघ्र चले आओ। तदनुसार आप एक महीने के अनन्तर फिर स्वामी जी के पास को चल दिये।

४२—स्वामी जी जब जोधपुर में थे और उनकी सेवा में भरतपुर राज्य का एक जाट भी उन दिनों रहता था। इस

जाट पर स्वामी जी का अत्यन्त विश्वास उत्पन्न होगया था उसे वे बड़ा श्रद्धालु, पूर्णभक्त, तथा आज्ञाकारी सेवक मानते व कहते थे। उक्त जाट ने गहरा हाथ मारने के लिये ही स्वा० द० जी को अपने युक्तिजालसे इस प्रकार मुग्ध बनाया था एक दिन उक्त जाट जी ने रात्रि के समय ताला खोला और ढाई सौ तीन सौ रोकड़ (नकद) तथा दुशाला आदि बहुमूल्य वस्त्र सब चार सौ का माल लेकर अपनी राह ली जोधपुर की पुलिसने जब अनुसन्धान आरम्भ किया तो स्वा० जी ने अपना सन्देह रामानन्द ब्रह्मचारी पर इस लिये प्रकट किया कि जाट के साथ इसका बड़ा मेल था इस पर विचारा रामानन्द एक सप्ताह तक जोधपुर की हवालात में हवा खाता रहा। वस्तुतः इस चोरी में रामानन्द का कुछ भी सम्पर्क न था उसे मिथ्या ही यह दोष लगाया गया था।

४४—इस चोरीसे स्वा० जी को बड़ा मानसिक धक्का लगा इसका शोक व सन्ताप उनके हृदय से कभी न हटा। जब से स्वामी जी धन संग्रह करने लगे थे तब से चोरी आदि द्वारा ऐसी हानि उन्हें कभी नहीं हुई थी। धन से स्वामी जी को इन दिनों ऐसा प्रेम होगया था कि उसके नाश से वे अत्यन्त व्याकुल होते थे। बस चोरी के शोक का प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर भी भयङ्कर रूपसे पड़ा। आश्विन (क्वार) के महीने में उनकी क्षुधा मन्द हो गई कुछ ज्वर भी हुआ। यद्यपि स्वा०द०जी पहले ही यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि हम डाक्टरी दवा कभी सेवन न करेंगे परन्तु जोधपुर में उन्हों ने अपनी उसी प्रतिज्ञा को भंग कर दिया। वे मुसलमान की छुई हुई वस्तु खाने से भी सदैव बचते रहते थे परन्तु इस बार अपने इस प्रण से भी वे विचलित हो गये।

४४—स्वामी जी ने जोधपुर में एक मुसल्मान डाक्टर से जुलाब की दवा मांगी तो उसने कदाचित् जमालगोटे का तेजाब आठ बूंद पिला दिया, इससे स्वामी जी को दस्त होने लगे, आंते उथल आईं और मूर्छा आरम्भ हो गई। दस्त बन्द करने की दवा से भी दस्त न रुके। पेट के भीतर फोड़े भी हो गये थे तथा आंतें बिगड़ गई थीं। स्वामी जी को अब अपने जीवनमें भी सर्वथा शंका हो गई अब वे बोले कि हमें आबू ले चलो, तो लोग उन्हें आबू ले गये। हमारे पूज्य चरितनायक घरसे चलकर इस बीच में अजमेर तक आ गये थे और यहीं स्वामी जी के घोर रूप से बीमार होने का समाचार आपको ज्ञात हुआ था। अजमेरमें आपको यह भी पता लग गया कि आबू से स्वा० जी अजमेर आ रहे हैं अतः आप यहीं तीन दिन तक ठहरे रहे।

४५—जब स्वामी जी अजमेर आ गये तो एक बंगले में ठहरे। आबू पर बहुत से आ० समाजी जा पहुंचे थे वहां से वे ही अजमेर ले आये क्योंकि वहां दवा का प्रबन्ध ठीक न था स्वामी जी की दशा इस समय बहुत बुरी थी। मुख पर भीतर व बाहर बड़े २ अनेक फोड़े थे, जीभ सड़ गई थी ओष्ठ दोनों सिकुड़ गये थे बोला न जाता था खाट पर स्वयं बैठ भी न सकते थे दिशा शौच के लिये चार मनुष्य पकड़ के उठाते थे पेट में दाह होता था, आग फुक रही थी बीच २ में बड़े यत्न से वे चिल्ला २ कर दही और अंगूर मांगते थे पर कोई न देता था केवल बालक की भांति कभी २ बहका देते थे। आप जब मिले तो कुशल क्षेम पूछा। अगले दिन जब स्वामी जी ने क्षौर कराया तो नाई को उन्होंने ५) रु० दिये। इस समय स्वामी जी के हृदय में उदारता का भाव भी कुछ जागृत हुआ था और कई मनुष्यों के नाम किसीको

पचास किसी को इससे कम रुपये देने लिखाये थे। परन्तु आ० समाजी स्वा० जी की इस बुद्धि को पागलपन जानते थे उन्होंने किसी को कुछ न मिलने दिया उक्त नाई से भी ५) छीनकर और केवल आठ आने उसे देकर फटकार दिया। अगले दिन संध्या के समय स्वामी जी का प्राणान्त हो गया यह दिवस सं० १९४० ठीक दिवाली का था उनके प्राण खाट पर ही निकले क्योंकि उससे उतारना पोपलीला मानी गई। स्वामी जी का शव (मुर्दा) रात्रि भर खाटपर ही पड़ा रहा अगले दिन अजमेर के मरघट में समाजियों ने शव को लेजाकर जला दिया। बहुत सा घृत चन्दन आदि चिता पर चढ़ाया। जब शिर न जला तो एक समाजी ने कपाल-क्रिया भी कर दी। कपाल के फूटते ही रुधिर की धारा बही थी। दाह से लौटकर समाजियों ने स्वामी जी के माल की एक सूची बनाई तो सोलह सौ रुपये (नक़द) निकला जो कई दुकानों पर जमा था तथा छापाखाना, पुस्तकालय वस्त्र आदि इससे पृथक् थे।

तृतीय-प्रकरण ।

"आर्यसमाज का परित्याग,,

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ॥

१-हमारे पूज्यपाद चरितनायक महोदय ने स्वामी द० जी की मृत्यु के पीछे कुछ दिन तक वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में संशोधनका कार्य किया था। परन्तु जब आपने सं० १९४२ में अपना मासिकपत्र "आर्यसिद्धान्त" नामक निकालना आरम्भ किया तो आ० समाजके कुछ नेताओं ने इसमें बड़े २ विघ्न डाले और चाहा कि यह पत्र बन्द हो जावे। परन्तु आपकी लेखन प्रतिभा-ऐसी उत्तम थी कि उक्त पत्र शनैः २ उन्नति करने लगा उसके साथमें ही आपने उपनिषद् मनुस्मृति भगवद्गीताके भाष्य भी लिखने आरम्भ कर दिये। इन सब में यद्यपि आपने आ० समाज के सिद्धान्त की पुष्टि की थी तथापि वर्णव्यवस्था, वेदाधिकार, गायत्री, मन्त्रभेद आदि बातों में आप उस समय भी सनातनधर्मके सिद्धान्त के अनुयायी तथा पोषक बने हुए थे। आपने संवत् १९४५ में प्रयाग में एक यन्त्रालय "सरस्वती यन्त्रालय" नामक स्वतन्त्र रूप से स्थापित किया उन्हीं दिनों दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज लाहौर में आपको १००) मासिक की नौकरी दिये जाने का पत्र प्राप्त हुआ परन्तु आपने उस समय नौकरी करने का मनोरथ सर्वथा त्याग दिया था और मुख्यकर आ० समाजियों की आधीनतामें रहना उन्हें सर्वथा अप्रिय था वैदिकयन्त्रालय की नौकरी में रहकर इसका अनुभव वे स्वयं कर चुके थे

और इसी लिये ऐसा विचार स्थिर कर लिया था। प्रयाग का जल वायु आपको प्रतिकूल होनेसे उसे आप सं० १९५२ में इटावा उठा लाये।

२—सं० १९५५ में आपको एक यज्ञ कराना पड़ा था। चूरू निवासी सेठ माधवप्रसाद जी ने जो कि कलकत्तेमें रहा करते थे और जो चूरू आ० समाज के उस समय मन्त्री भी थे, एक अग्निष्टोम यज्ञ करने की आप से पत्र द्वारा इच्छा प्रकट की। इस यज्ञमें अनुमान से पांच सहस्र मुद्रा का व्यय हुआ था। इस यज्ञ के सम्बन्ध में आपने कोई डेढ़ वर्ष तक वैदिक साहित्य का पूर्णरीत्या अनुशीलन किया तो आपको बहुत सी बातें आर्यसमाज की वेदविरुद्ध दीख पड़ीं। आपने उक्त सेठ जी से भी स्पष्टता पूर्वक यह बात कह दी तो वे बोले कि हमें आ० समाज से कुछ प्रयोजन नहीं है आप तो वेद की विधि से हमारा यज्ञ कराइये। निदान यही हुआ और इस यज्ञमें जो श्राद्ध आदि कृत्य हुये उनपर आ०समाज में बड़ा कोलाहल खड़ा हो गया। जब आ० समाज के नेताओं ने आपकी निन्दा आरम्भ की तो तत्काल आपने शास्त्रार्थ की घोषणा कर दी।

३—संवत् १९५७ में इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में सनातनधर्म सभा का एक वृहद् अधिवेशन हुआ जिसमें आप भी सम्मिलित हुये थे। उसी अवसर पर ला० मुन्शीराम (वर्तमान स्वा० श्रद्धानन्द जी) सेठ लच्छीराम, मुन्शी नारायणप्रसाद आदि पञ्जाबी तथा युक्तप्रदेशीय नेताओं ने आप से मिलकर प्रतिज्ञा की थी कि पितृश्राद्ध पर आपके साथ हम विचार अवश्य करेंगे। परन्तु उक्त महाशयों ने अपने इस वचन का प्रतिपालन किञ्चिन्मात्र भी न किया।

४—सं० १९५८ में आपके साथ आगरा आ० समाज का

यह प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ कि जिसने आ० समाज की जड़को ऐसा हिलाया कि फिर वह प्रतिदिन सीणही ही होती चली गई। उक्त शास्त्रार्थ दिन में ३ घण्टे लिखित होता था और रात्रि को सदा २ घण्टे तक व्याख्यानों द्वारा दोनों पत्त अपने २ आशय को आ० समाज मन्दिर आगरा में समझाते थे। तीन दिवस तक ऐसा ही होता रहा आ०समाजके स्थान में और सहस्त्रों विपक्षियोंके बीचमें कि जिनमें से कई दुर्बुद्धि लोग उपहास तथा धृष्टता करने में उस समय कुछ भी संकोच नहीं कर रहे थे आप मृगसमूह में सिंह के समान गम्भीर गर्जना करते हुए अपने प्रतिपाद्य विषय का मण्डन तथा विपक्ष का खण्डन कर रहे थे। आपकी उस समय की मुख मुद्रा पर जो छवि विराजमान थी वह लेखनी की शक्ति से नितान्त बाहर है। ऐसा ज्ञात पड़ता था कि मानो आप स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण जी का स्वरूप धारण करके कौरवोंकी सभा में मेघ गम्भीर वाणीसे वक्तृता दे रहे हैं अथवा मानो स्वयं शङ्कराचार्य बनकर आप बौद्धों के दल का विमर्दन कर रहे हैं। वह दृश्य जिन्होंने निज नेत्रों से देखा था वह आमरण उसे नहीं भूल सकते। सौभाग्य से यह क्षुद्र लेखक वहां स्वयं उपस्थित था आपकी निर्भीकता प्रवीणता साहस प्रागल्भ्य आदि सद्गुणों का समुच्चय एक साथ मूर्तिमान् स्यात् फिर वैसा कभी किसी ने ही देखा होगा। यद्यपि लिखित शास्त्रार्थों का जय पराजय तत्काल समझ में नहीं आता परन्तु व्याख्यानों में आपकी मुख मुद्रा से उन सब लोगों को कि जिन्हें स्वधर्म में थोड़ी भी श्रद्धा है, यह स्पष्ट प्रतीत हो चुका था कि आप निस्सन्देह विजयी हैं।

५-श्रीमान् ब्रह्मचारी जीवनदत्त जी (नरवर वाले) शास्त्रार्थ आगरा में आपके साथ थे। उन का निज नेत्रों का

देखा, यह द्रष्टव्य है कि पं० तुलसीराम आदि को तो आ० समाजियों ने ऐसा कागज दिया था कि जिसे नीचे रख लेने से नकल होती जाती थी, परन्तु वैसा कागज आपको नहीं दिया गया था। आप को अपने उत्तर की नकल भी स्वयं करनी पड़ती थी कि जिसमें परिश्रम के अतिरिक्त कालक्षेप भी अधिक होता था उसी समय ब्रह्मचारी जीने निज कानों से कई आ० समाजी भद्र जनों को यह कहते भी सुना था कि यदि स्वयं स्वा० दयानन्द जी आकर मृतकश्राद्ध को वेदों के प्रमाण द्वारा सिद्ध करदें तो भी हम इसे न मानेंगे इत्यादि।

६—उन दिनों आ० समाजी जगत्में पं० देवदत्त शास्त्री कानपुर वाले पूर्ण वैयाकरण पण्डित थे न्याय तथा वेद भी जानते थे। उनसे उतर कर पं० तुलसीराम स्वामी मेरठ वालों का आसन था यद्यपि उक्त पं० देवदत्त जी विद्वत्तामें पण्डित तुलसीराम जी से अधिक थे परन्तु उनमें प्रतिभा तथा लोकचातुर्य की मात्रा कुछ भी न थी। अतएव पं० तुलसीराम जी ने ही वह रिक्त आसन प्राप्त कर लिया कि जो आपने आ० समाज के परित्याग करने से छोड़ा था।

७—आ० समाज में जब आपके पृथक् होते ही हलचल मची तो न केवल युक्त प्रान्त के आ० समाजियों ने ही पं० तुलसीराम जी पर मुकुट रक्खा किन्तु पञ्जाब, बंगाल, बंबई मध्यभारत आदि प्रान्तों में भी वे ही एक विख्यात पण्डित माने गये। वस्तुतः विद्या के अतिरिक्त उक्त पं० जी में कई ऐसे सद्गुण भी थे जिनके कारण वे अपने प्रतिपक्षियों को भी सदैव प्रिय प्रतीत होते थे उनका मुख सदैव हमने प्रफुल्लित देखा, उनकी वाणी हमें सदैव मनोहारिणी जान पड़ी उनके आसन को पूर्ण कर सके ऐसा कोई पण्डित आ० स० में न रहा। उन्हों ने आ० स० का अन्त तक सामना किया।

यद्यपि अनेक वार अनेक विषयों पर वे आ० स० के साथ उत्तर प्रत्युत्तर में हार गये थे तथापि कुछ न कुछ लिखना उन्हों ने अन्त समय तक न छोड़ा उनकी शोक जनक मृत्यु सं० १९७२ में हुई।

८—आर्य प्रतिनिधि सभा युक्तप्रान्तने सं० १९५८ में एक घोषणा निकाली कि आपको आ० समाजोंसे पृथक् करदिया गया है जब कि आप स्वयमेव आ० समाज को परित्याग करने का अपना विचार अपने "आर्यसिद्धान्त" मासिकपत्र में प्रकाशित करा चुके थे तो फिर न जाने यह हास्यजनक कृत्य उक्त सभाने क्यों किया।

९—आर्य प्रतिनिधि सभा की उक्त घोषणा ने आपकी धर्मान्दोलन की महती इच्छाको विशेष रूप से उत्तेजित कर दिया और आपने देशाटन द्वारा इस कार्य को सिद्ध करना चाहा तत्काल आप इस कार्य में संलग्न हो गये।

१०—पञ्जाब, बिहार, बंगाल, काठियावाड़, राजपूताना मध्यभारत, मध्यप्रदेश आदि २ दूरवर्त्ती प्रान्तों की धर्मसभाओं ने जब आपकी इच्छा को जान लिया तो बड़ी प्रसन्नता से उन्हों ने समय २ पर आपका आह्वान किया और आपके उपदेशामृत को अर्पण करके कृतकृत्यता प्राप्त की।

११—उधर आ० स० के लेख बड़े प्रबल वेगसे निकल कर आ० स० रूपी दुर्ग पर तोप के गोले की भांति बरस रहे थे इधर आपके व्याख्यानों ने भी आ० समाज के उपदेशक रूपी योधाओं पर संगीनोंकी सी मार मचा रक्खी थी। परिणाम यह हुआ कि स्वा० विश्वेश्वरानन्द जी ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी, पं० देवदत्त जी, पं० आर्यमुनि, पं० तुलसीरामजी आदि आ० समाज के महारथी वीरों के देखते २ आपने आ०समाज के मन्तव्य रूपी दुर्ग की प्रत्येक ईंट को फैलाकर भूतल पर डाल दिया। सिद्धान्त की दृष्टि से आ० समाज का संसारमें अब कुछ भी गौरव नहीं रह गया है।

चतुर्थ प्रकरण ।

अज्ञस्य दुःखौघमयं ज्ञस्यानन्दमयं जगत् ।
अन्धं भुवनमन्धस्य प्रकाशं तु सचक्षुषः ॥

आपके ग्रन्थ तथा लेख ।

१—आ० समाज में रहते हुये आपने जो लेख-कार्य संवत् १९४२ से लेकर सं० १९५५ तक किया था उसमें आर्यसिद्धान्त के १२ वर्ष के अङ्क तथा उपनिषद्भाष्य, गीताभाष्य, मनुस्मृतिभाष्य ही प्रधान थे । जब सं० १९५८ में आपने आ०समाज का परित्याग कर दिया तो उक्त समस्त साहित्य को आपने रद्दी के मूल्य में बेच दिया जिसे आ० समाज में बेच २ कर लोग मालामाल हो गये ।

२—आपने सं० १९५९ में "ब्राह्मणसर्वस्व" मासिकपत्र निकालना आरम्भ किया और उसे अन्त तक सम्पादित करते रहे यद्यपि गत पांच वर्षों से आप कलकत्ता विश्वविद्यालयमें वेद व्याख्याता पद पर सुशोभित थे इसी कारण आप को अवकाश अधिक न मिल पाता था तथापि आप के एक दो लेख अवश्य उसमें रहा करते थे ।

३—ब्राह्मणसर्वस्व में आरम्भ ही से आपने सनातनधर्म का स्वरूप समझाते हुये अनेक युक्तियों तथा प्रमाणों के आधार पर वर्त्तमान आ० समाज की वेदविरुद्धता को सिद्ध किया है । आ० समाज के मन्तव्यों का ऐसा अकाट्य खण्डन आपसे पहले किसी ने नहीं किया था ।

४—आपने स्पष्ट सिद्ध कर दिखाया कि सन्ध्या, अग्निहोत्र, जप पञ्चमहायज्ञ आदि कर्मकांड की छोटी २ बातोंकी

की परिभाषायें आ० समाज ने नूतन कल्पित की हैं वे गृह्य सूत्र आदि आर्षग्रन्थों के सर्वथा विरुद्ध तथा वेदोक्त विधि की विघातक हैं।

५—संस्कार विधि में शूद्र वर्ण को भी उपवीतमात्र माना है, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास, तथा अन्त्येष्टि की गणना सोलह संस्कारों के अन्तर्गत लिखी है यह भी वेदविरुद्ध है।

६—वेदों की ११३१ शाखाओं में से केवल चार शाखाओं को वेद कहना तथा मानना यह भी आ०समाज की भूल है।

७—स्वामीजी ने ऋग् यजु आदि के समान ब्राह्मण ग्रन्थ आदि को भी ईश्वर द्वारा निःश्वसित लिखा है फिर उन्हें प्रमाण कोटि में आदर की दृष्टि से न देखना आ० समाज की भ्रान्ति क्यों न मानी जावे?

८—जूते पहने हुये ही "आपो भवन्तु पीतये" उच्चारण करने का नाम सन्ध्या, तथा यज्ञ की धुनी हुई समिधाओं से "स्वाहा स्वाहा" करने का नाम अग्निहोत्र कहना भी नितान्त भ्रममूलक है।

९—देवता, उपासना, अवतार, वर्णव्यवस्था, पितृयज्ञ, (श्राद्ध) नियोग, प्रायश्चित्त, मूर्तिपूजा, तीर्थ आदि २ का यथार्थ रहस्य यदि हमारे पाठकों को देखना अभीष्ट है तो ब्राह्मणसर्वस्वके गतवर्षोंके समस्त अङ्क उन्हें देखना चाहिये।

१०—नीचे हम ब्रा० स० के पिछले अङ्कों की एक विषय सूची देते हैं कि जिससे हमारे पाठकों को उन गहन विषयों का कुछ आभास हो सके कि जिन्हें विशदरूप से उस में स्पष्ट किया गया है।

१—वेदों के परम गूढ़ विषयों पर लेख।

१ शुनःशेप की कथा, २ वैदिक सिद्धान्त, ३ वेद विचार, ४ मातृमण्डलाभिकर्षण, ५ वेद में विधान मीमांसा, ६ देवता

मीमांसा, ७ यज्ञाग्निविद्या, ८ परोक्ष देवता मीमांसा ९ महायज्ञ, १० वेद महिमा, ११ जातवेदस् देवता विचार, वृहदारण्यक (उपासना तथा काम्य ।

२—आक्षेपोंके उत्तर ।

१—ब्रह्माजी का दुहितृ संगम, २—शिवलिङ्ग पूजा ३—तुलसीकृत रामायण, ४—पुराणमीमांसा, ४—आर्यसमाज व्यावरके प्रश्नों के उत्तर, ५—पुराणवैचित्र्य समीक्षा, ६—पादरी केलदास का समाधान, ७—शूद्रको वेदाधिकार, ८—आ०स० के प्रश्नों के समाधान, ९—दिल्ली के प्रश्नों के समाधान, १० श्रीमद्भागवत, ११—सनातनधर्म और वैदिकसर्वस्व ।

३ समालोचना तथा समीक्षा ।

१—वेदप्रकाश समीक्षा तथा तुलसीरामीय सामवेद भाष्य का खण्डन, २—अज्ञान तिमिरभास्कर (जैनमत समीक्षा) ३ जैनियों का आस्तिकत्व, ४ आर्यावर्त्त की धींगा धींगी, ५ मर्यादा (स्त्रीजाति विषयक) ६ गीता रहस्य, ७ भगवद् गीता विचार दर्पण, ८ वेदार्थप्रकाश समीक्षा, ९ क्या अन्त्येष्टि क्रिया कोई संस्कार है ? १० वेद सर्वस्वालोचन, ११ ऐतरेयालोचन, १२ वेदतत्त्वालोचन, १३ निरुक्तालोचन, १४ पशुपूजालोचन, १५ नियोग की अवैदिकता, १६ ज्योतिष चमत्कारालोचन ।

४ धर्मतत्त्व (सामान्य व विशेष)

१ ब्राह्मण, २ देवता, ३ मूर्त्तिपूजा, ४ ईश्वरावतार ५ तीर्थ मीमांसा, ६ वर्णाश्रमधर्म, ७ सम्प्रदाय वा धर्मसम्मेलन ८ राजधर्म, ९ राजसूय, १० राजसत्ता, ११ श्री शङ्करदिग्विजय १२ बुद्धावतार, १३ श्रीकृष्ण भगवान् का व्याख्यान, १४ अभीष्ट सन्तानोत्पादन का प्रकार, १५ शास्त्रव्यवस्था, १६ मात्राविज्ञान ।

५—सामयिक प्रश्न

१—समुद्रयात्रा, २ स्त्रीशिक्षा मीमांसा, ३ कायस्थ जाति विचार, ४ परमार्थी स्वदेशी दल, ५ ईसपुरुषार्थ, ६ अर्थशास्त्र, ७ जातीय पक्षपात, ८ पं० सत्यव्रत सामश्रमी की मृत्यु, ९ पं० शिवकुमार तथा पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र का स्वर्गवास।

६—वर्त्तमान आर्यसमाज।

१ वर्त्तमान आ० समाज, २ वर्त्तमान आ० समाज का हितैषी विचार, ३ स्वा० दयानन्द की प्रशंसा, ४ आ० समाज की नीति, ५ आ० समाज का कर्त्तव्य, ६ आ० समाज क्यों छोड़ा, ७ आ० समाजी मत (शास्त्रार्थ के नियम) ८ सनातन धर्म और आ० समाज (विरोध शान्ति के उपाय) ९ वेद न मानने वाले समाजी।

११—ब्रा० स० में प्रेरित लेखों की भी मात्रा इतनी अधिक है कि जिसका सविस्तर यहां उल्लेख होना स्थानाभाव से असम्भव ही है तथापि इसका भी कुछ निर्देश यहां करना अनुचित न होगा। अतः ऐसे लेखदाताओं का कुछ परिचय नीचे देते हैं।

(अ) ब्रा०स० के आरम्भ कालके अंकोंमें श्री स्वा० शान्त्यानन्द जी का नाम अनेक लेखों में आता है। ये महात्मा अतरौली जि० अलीगढ़ के निवासी एक ब्राह्मण थे। गृहस्थ दशा में इनका नाम पं० बद्रीदत्त जी था। बहुत काल तक इन्हों ने शिक्षाविभाग में अध्यापक का कार्य किया था। जिस समय ये आ० समाजी थे। सं० १९५५ में ये इटावा पहुंचे और श्री गुरुवर्य महोदय (श्री वेदतीर्थस्वामी जी) से ही संन्यासदीक्षा ली और ये आपके ही पास रहने लगे थे। अनुमान से दश वर्ष तक संन्यासाश्रम में रह कर गढ़ीलाट पर पञ्चत्व कोप्राप्त हुए।

(क) मुन्शी जगन्नाथदास जी के भी लेख आरम्भसे अब तक ब्रा० स० में प्रायः छपते रहे हैं। इनके लेखोंने भी आ० समाज के मन्तव्यों पर ऐसा मर्म–प्रहार किया है कि जिसके घाव कभी भी पूरे न होंगे। इनके लेखोंका यथार्थ उत्तर देने वाला आ० समाजमें कोई विद्वान् आज तक जन्मा ही नहीं है। पहले ये आ० समाज मुरादाबाद के मन्त्री रहे थे और वहां के मुन्शी इन्द्रमणि जी के जो कि स्वा० दयानन्द जीके समय में बड़े नामी विद्वान् (अर्बी फारसी में) थे शिष्य हैं।

(ख) पं० रामदत्त ज्योतिर्विद् भीमताल नैनीताल निवासी भी एक अत्यन्त विख्यात व्यक्ति हैं कि जिनका धार्मिक उत्साह इनके अक्षर २ से टपकता रहता है। ये भी ब्रा० स० के प्राचीन लेखदाता हैं।

(ग) पं० हीरानन्द शास्त्री एम० ए० लाहौर, पं० रामप्रताप शर्मा शास्त्री अजमेर, पं० गणेशदत्त शास्त्री डेरागाज़ीखां, पं० रघुनाथदत्त शर्मा मुलतान, पं० गंगाशंकर भरतपुर, पं० तुलाराम अम्बाला, पं० शिवचन्द्र शर्मा जमालपुर (बंगाल) श्री मार्कण्डेयप्रसाद भट्टाचार्य, पं० लालताप्रसाद, पं० गोविंदराम शर्मा नाहन, पं० महेश्वरप्रसाद हरदोई, पं० मनोहरलाल मुलतान, पं० पुत्तीलाल गनियारी, पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, पं प्रयागप्रसाद कानपुर, पं० महावीरप्रसाद शुक्ल टेढ़ा, पं० नृसिंहदत्त शर्मा, पं० कालूराम शा० अमरौधा, पं० तुलसीराम शर्मा सितारी, पं० मातादीनशर्मा नौगांव, पं० अखिलानन्दशर्मा पाठक, आदि विद्वन्मण्डलीके लेख भी ब्रा० स० के गताङ्कों में दृष्टिगोचर होते हैं। यदि स्वयं वेदव्याख्याता जी महाराज के लेखोंको हम ब्रह्मा जी मानें तो इन उक्त विद्वानोंके लेखों को हम भृगु वसिष्ठ अंगिरा आदि महर्षिगण कह सकते हैं।

(ग) जहां ब्रह्मर्षि महर्षिगण शोभायमान हों तो वहां राजर्षि कोई न हो यह सम्भव नहीं है। अतः राजा फतेसिंह वर्मा पुवायां,जिला शाहजहांपुर, विशालसिंह देव वर्मा उचोती जिला मैनपुरी, ठा० मुकुटसिंह वर्मा इटावा, बा० कुमारिका वरुणसिंह जि० बस्ती, बा० जगन्मोहन वर्मा बस्ती, बा० नारायणसिंह वकील अमृतसर, बा० रघुवर उपनाम मिट्ठूलाल श्रीवास्तव प्रयाग, बा० अयोध्याप्रसाद वर्मा कलकत्ता, स्वामी दयालसिंह बाराबंकी, ला० गिरजानन्द कायस्थ सिवनी, तथा कुञ्जीलाल वर्मा अमरौधा के लेख इस त्रुटि को पूरा कर रहे हैं।

(घ) श्री १०८ श्रीमद्वल्लभाचार्य जी महाराज का व्याख्यान और हमारे वाणीभूषण जी (पं० नन्दकिशोरजी टेढ़ा) का यह लेख कि जिसमें उन्हों ने काशी के महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार जी की मृत्यु पर शोक प्रकाशित किया है ऐसे लेख हैं कि जिनका यदि बारम्बार मनन किया जावे तो प्रतिवार नया ही आनन्द प्राप्त हो सकता है।

१२-इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्राह्मणसर्वस्व का चौदह वर्षों तक सम्पादन करके आपने सनातनधर्म के गूढ़ सिद्धान्तों की उस में इतनी अच्छी तरह व्याख्या की है कि यदि आप ब्राह्मणसर्वस्व के अतिरिक्त अपने जीवन में और कुछ भी न लिखते तब भी आपका यह कार्य इतने महत्वका समझा जाता कि आपकी (यावच्चन्द्रदिवाकरौ) ख्याति के लिये यही पर्याप्त समझा जाता, सनातनधर्म के प्रतिष्ठित नेताओं और विचारशीलों की सम्मति है कि ब्राह्मणसर्वस्व ने जन्म लेकर पिछले दिनों यह काम किया है कि जिसको २० उपदेशक ५० वर्षमें भी न कर पाते। ब्राह्मणसर्वस्व के जन्म से प्रथम धार्मिक जगत् में हलचल मची हुई थी,

नसाजी समाजी ईसाई और जैनी आदि सनातनधर्म के विरोधियों ने सनातनधर्म रूपी दुर्ग पर शंका रूपी गोलों का प्रहार कर रक्खा था, जिनका उत्तर सनातनधर्म की ओर से नहीं दिया जा रहा था, सनातनधर्मी अपने धर्म की प्राचीनता और वेदों के अटल विश्वास रूपी खाई का सहारा लेकर निश्चेष्ट बैठे हुये थे। इधर वेदविरोधियों के कुतर्करूपी चूहे सनातनधर्म रूपी दुर्ग की जड़ को खोखली कर देने की फिक्र में लगे हुए थे। ब्राह्मणसर्वस्व ने जन्म लेकर इस समय अद्भुत काम किया, एक तरफ तो उसने सनातनधर्म पर होने वाली शंकाओं का निराकरण आरम्भ कर दिया दूसरी तरफ आ० समाजियोंके वेदविरुद्ध सिद्धान्तोंकी वह सच्ची समालोचना आरम्भ की, जिसे देखकर बड़े २ समाजी नेताओं के होश बिगड़ गये। ब्रा० स० की पिछली फायलों में मूर्तिपूजा अवतार, वर्णव्यवस्था, तीर्थ, मृतकश्राद्ध, आदि सभी विषयों पर युक्ति प्रमाण पूर्वक ऐसे विस्तृत लेख निकल चुके हैं कि उन लेखोंको एक बार पढ़ लेने पर फिर कोई शंका शेष नहीं रहती "भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः" इस श्लोकार्द्ध के प्रत्यक्ष परिचायक लेख ब्राह्मणसर्वस्वमें निकल चुके हैं।

१३—पं० जी की बड़ी इच्छा थी कि सभी आर्ष ग्रन्थों को उत्तम संस्कृत भाष्य और सरल हिन्दी भाषाटीका सहित हम प्रकाशित करें। पर वे यह नहीं चाहते थे कि अन्य किसी से भाषानुवाद करवाके अपने नामसे ग्रन्थोंका मुद्रण कराया जावे उन्हें अपना ही लेख पसन्द था, जो कुछ उन्होंने किया अपनी लेखनी के बल से किया। आर्थिक संकट और कार्याधिक्य से वे अपने सब मनोरथों को पूर्ण नहीं कर सके तथापि उन्हें इस बात का सच्चा गर्व था और वे इस बात को

समय २ पर कहा भी करते थे कि आर्ष ग्रन्थोंका अनेक पा-
श्चात्य विद्वानों ने अनुवाद करके बड़ा अनर्थ कर रक्खा है,
जो लोग जिस विषय के ज़रा भी जानकार नहीं वे भी
अपना नाम करनेके लिये लेखनी उठा लेते हैं और मनमाना
रूप से विकृत अर्थ करके ऋषियों के गौरव को नष्ट करते हैं।
हमारे चरित्रनायक वैदिक विषयों के अपूर्व ज्ञाता थे इसी
लिये वे आर्षग्रन्थों पर ही लिखते थे। उनका संस्कृत भाष्य
पढ़ते समय यह मालूम पड़ता था कि मानो किसी प्राचीन
ऋषि का भाष्य पढ़ रहे हैं। सरल संस्कृत होने पर भी भाष्य-
में ऐसा रहता था कि बिना उस विषय का ज्ञाता हुए
उस ग्रन्थ का समझना ही कठिन हो जावे।

१४—वेदोंके विषयमें पं० जी का मत था कि उनका हिन्दी
अनुवाद करना वेदोंके गौरवको नष्ट करना है उनकी राय थी
कि वेदोंके ऊपर सायण, महीधर और उव्वट आदि प्राचीन
विद्वानोंके जो भाष्य मिलते हैं वे ही पर्याप्त हैं। बिना
तपोबल और वेदों का पूर्ण ज्ञाता हुए वेदोंका भाष्य करना
केवल हास्यास्पद है आज समाजके अन्दर तो वेदोंपर भाष्य
करने की ऐसी प्रवृत्ति और स्पृहा विद्यमान है कि नित नये
भाष्य बरसाती मेंढकों की तरह निकल रहे हैं। जिन्हों ने
कभी निरुक्त, प्रातिशाख्य, ब्राह्मण, मीमांसा आदि वेद ज्ञानो-
पयोगी ग्रन्थोंका अध्ययन नहीं किया वेभी मनमाना वेदभाष्य
लिखकर दिल्ली के पांचवें सवारों में अपनी गणना कराना
चाहते हैं। इधर प्राचीन विद्वानों का मत है कि—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥

पर आजकलके (यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्)
से मानो सदाहरणीभूत पण्डितम्मन्यों को इस की क्या

किया, वे तो किसी न किसी प्रकार का भाष्य करके अपने नाम के आगे वेद भाष्यकारकी पदवी लगाने के इच्छुक हैं।

१५—यद्यपि पं० जी का विचार स्वयं वेदभाष्य करनेका न था, इसी लिये अनेक बार प्रतिष्ठित सनातनधर्मियों के कहने पर भी उन्होंने इस विषय पर अपना मन्तव्य समयर पर प्रकाशित कर दिया था, तथापि उनकी यह इच्छा थी कि हम उन साधनों को सुलभ करदें जिनके द्वारा संस्कृत विद्वान् स्वयं भी वेदार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकें इसके लिये उनका विचार था कि एक तो हम तो निरुक्त का भाष्य करदें जो वेदार्थ ज्ञानके लिये परमोपयोगी है। द्वितीय उनका विचार एक ऐसे वैदिक कोश के लिखने का भी था कि जिस में उन सब वैदिक शब्दों का अर्थ निरूपण किया जाय कि जिन के अर्थ में सन्देह पड़ सकता है। निरुक्त के कार्य का प्रारम्भ तो १०—१२ वर्ष पहिले ही किया गया और इस विषय की सूचना भी तत्कालीन समाचार पत्रों द्वारा दी गई थी, प्रथम मूल्य भेजकर ग्राहक बनने वालों के लिये मूल्य में भी कुछ सुविधायें रक्खी गई थीं, पर आशानुरूप धनागम न होने से पुस्तक कुछ लिख जाने पर भी उसका मुद्रण न होसका और वह कार्य अधूरा ही रह गया। द्वितीय वैदिक कोश के लिये अकारादि वर्णानुक्रम के अनुसार शब्दों का संग्रह किया जा कर उन पर निरुक्तादि आर्षग्रन्थों में लिखी निरुक्त लिखी जा रही थी, अभी इस पर अन्य वैदिक ग्रन्थों के प्रमाणों के सिवाय वेदव्याख्याता जो स्वयं अपना भी विचार प्रत्येक शब्द पर लिखना चाहते थे इसमें यह भी निश्चित किया जाने को था कितने शब्द एकार्थ हैं और कितने अनेकार्थ। उदाहरण में वेदमन्त्रों के रखने का विचार था। प्रत्येक शब्द पर जितना विचार वैदिक साहित्य में मिल सकता था उस का

इस ग्रन्थ में पूर्ण संग्रह होता। इसमें सन्देह नहीं कि यदि यह ग्रन्थ पूर्णतया लिख जाता तो वैदिक साहित्यके लिये एक अपूर्व रत्न सिद्ध होता। और वेदमन्त्रों के शब्दार्थ निर्णय करने में जो कठिनाइयां पड़तीं हैं वे दूर हो जातीं।

१६—संस्कृत साहित्य के सभी विषयों की पूर्णता की तरफ आपका ध्यान था व्याकरण की पूर्ति के लिये आपने मूल अष्टाध्यायी छपाई थी उस समय तक मूल अष्टाध्यायी के जितने संस्करण छपे थे उनमें यह अष्टाध्यायी सर्वोत्तम मानी गई थी, इसमें अकारादि वर्णानुक्रम के अनुसार सूत्र सूची के सिवाय यह विशेषता थी कि आपने सम्पूर्ण अष्टाध्यायी का प्रकरण निर्देश भी सूत्रों के साथ कर दिया था, यद्यपि व्याकरण पढ़ने वाले सूत्र का यह सामान्य लक्षण जानते हैं कि—

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्॥

—पर इसके अनुसार कौन संज्ञा सूत्र हैं। कौन परिभाषा सूत्र हैं इन बातों की अवगति तब तक उन्हें नहीं होती जब तक उन्हें व्याकरण का यथार्थ बोध न हो जावे। इन बातों का सरलता से ज्ञान होने के लिये ही आपने समस्त अष्टाध्यायी के सूत्रों का प्रकरण निर्देश कर दिया था, इट् प्रकरण, पत्वप्रकरण, लुट्प्रकरण आदि सभी प्रकरणों को मूल पाठ के साथ ही जान लेने से सूत्रार्थज्ञान में और व्याकरण के बोध होने में बड़ी सहायता मिल सकती है।

१७—यद्यपि इस समय लघुकौमुदी और सिद्धान्तकौमुदी का व्याकरण पाठियों में अधिक प्रचार है पर इस में कोई सन्देह नहीं कि मूल व्याकरण का अच्छा और शीघ्र-बोध जितना अष्टाध्यायी के द्वारा हो सकता है उतना सि-

शिस क्रिया-का अष्टाध्यायीमें जितने गण आते हैं वे सब इस में-श्लोकबद्ध हैं साथ ही उनके अर्थ और उदाहरण भी इस में दिये गये हैं वास्तव में यह पुस्तक व्याकरणपाठियों के लिये परमोपयोगी है।

१९—कर्मकाण्ड के प्रचार के आप बड़े इच्छुक थे, आपका यह विश्वास था कि देश की अधोगति के मुख्य कारणों में से एक कारण यह भी है कि इस समय लोगों के धार्मिकभाव बहुत शिथिल हो गये हैं। कर्मकाण्ड सम्बन्धी विचारों में लोगों की न आदर बुद्धि है न श्रद्धा। श्रौतस्मार्त्त कर्मों का इस प्रकार अभाव देखकर आपने उन कर्मों के प्रचारार्थ सब से पहिले इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया कि लोगों को श्रौतकर्मों की विधि जानने के लिये उपाय सरल कर दिये जांय। जिस समय इटावा में आपने अग्निष्टोम यज्ञ कराया तो आपको पद्धतियों के अन्वेषण करने में बड़ा परिश्रम उठाना पड़ा, एतदर्थ जब आपने श्रौत-यज्ञों का साङ्गोपाङ्ग ज्ञान प्राप्त कर लिया तब सर्वसाधारण के लाभार्थ सम्पूर्ण श्रौत कर्मोंकी प्रकृति दर्शपौर्णमास पद्धति का निर्माण किया। उसी सिलसिले में आपने इष्टिसंग्रह, यज्ञपरिभाषा सूत्रसंग्रह, स्मार्त्तकर्मपद्धति आदि कई ग्रन्थ लिखे मानवगृह्यसूत्र और आपस्तम्बगृह्यसूत्रकी पुस्तकें यूरोपसे मंगाकर उनपर सरल हिन्दी भाषा टीका करके उन्हें प्रकाशित किया। सनातन धर्मियों में संस्कारों का अभाव देखकर षोडशसंस्कारविधिका निर्माण किया इसमें १६ संस्कारोंकी विधि पूर्णरीत्या साङ्गोपाङ्ग लिखी है नित्यकर्मों का प्रचार करने के लिये १—पञ्च-महायज्ञविधि २—नित्यहवनविधि ३—त्रिकालसन्ध्या ४—कालीयतर्पण और ५—भोजनविधि नामक पुस्तकों को सरल हिन्दी भाषा में विधि सहित लिखकर प्रकाशित किया।

२०—धर्म और ज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों में आपकी उस टीकाका हिन्दी संसार में बड़ा महत्त्व है जो आपने उपनिषदों पर लिखी है। आर्य सामाजिक अवस्थामें दशों उपनिषदों पर संस्कृत और हिन्दी में आपने विस्तृत भाष्य लिखा था, आ० सामाजिक जगत्में इन उपनिषदों का आदर बड़ी श्रद्धा के साथ किया गया था, हमारे चरितनायक द्वारा निर्मित उपनिषद्भाष्य पर उस समय की आ० सामाजिक विद्न्मण्डली मोहित थी,। उस समय के भाष्य में जो आर्यसामाजिक गन्ध आ गया था उसे आपने सनातनधर्म में आकर संशोधन द्वारा दूर कर दिया, संशोधित उपनिषदों में १—ईश २—केन ३—कठ ४—प्रश्न और ५—श्वेताश्वतर उपनिषद् छप चुके हैं। धर्म सम्बन्धी अन्य पुस्तकोंमें स्मृतियों का परिगणन पहिले किया जा सकता है आपने १८ स्मृतियों पर हिन्दी भाषा में टीका की है। याज्ञवल्क्यस्मृति पर भी सरल भाषाटीका आपकी प्रकाशित हो चुकी है। कलियुगमें पाराशर स्मृति को विशेष प्रयोजनीय समझकर उस पर भी आपने सरल हिन्दी टीका की, मनुस्मृति के दो अध्यायों पर भी आपने हिन्दी टीका लिखी थी पर उसे पूर्ण न कर सके। अष्टादशस्मृति के भाष्य में आपने एक विशेष महत्त्व का कार्य यह किया कि ऋषियों द्वारा निर्माण की हुई स्मृतियों पर ही भाष्य लिखा, वृद्धहारीत इत्यादि नामसे कुछ स्मृतियां ऐसी भी बन गई हैं जिनमें सम्प्रदायी मनुष्यों ने शंख चक्रादि की बातों को रख दिया है ऐसा कार्य ऋषियों के नाम से दुराग्रही लोगों ने किया है। बात यह है कि सम्प्रदायके चिन्हादिका आग्रह करना स्मृतिका विषय कदापि सिद्ध नहीं होता, वैदिकसिद्धान्तानुयायियोंका मत है कि—

१–यज्ञोमन्त्रब्राह्मणस्यविषयः । २–लोकव्यवहारव्यव-स्थापनं धर्मशास्त्रस्यविषयः । ३–पुरावृत्तमितिहासस्य

अर्थात् मन्त्रब्राह्मण का विषय यज्ञ है अथवा यों भी कह सकते हैं कि मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद में यज्ञ विषय का प्रतिपादन किया गया है धर्मशास्त्रों में लोकव्यवहारकी व्यवस्था कीगई है और इतिहासमें प्राचीन ऋषि महर्षि राजा महाराजाओं के चरित्रों का वर्णन है । इस दशा में आपका उन्हीं स्मृतियों को प्रकाशित करना (कि जिन्हें ऋषियों ने लोक कल्याणार्थ रचा है) विशेष महत्त्व का कार्य है । धर्म सम्बन्धी अन्य कई पुस्तकें भी आपने लिखी थीं जो प्रकाशित होचुकी हैं । देवीमाहात्म्य पुस्तक आपकी विचित्र मेधाशक्ति का ज्वलन्त प्रमाण है इस की रचना आप ने स्वतन्त्र की है इस में श्रुति,स्मृति पुराणों का अभिप्राय लेकर एक ऐसे नये ढंगसे देवीका स्वरूप तथा महत्त्वादिका वर्णन किया गया है जो सब किसी को लाभकारी जान पड़ेगा । गीतासंग्रह नामक पुस्तक में महाभारत की १२ गीताओं का संग्रह है । पतिव्रतामाहात्म्य और सतीधर्मसंग्रह भी आप की ही रचना है । इनके नामसे ही इन पुस्तकों में प्रतिपादित विषय का ज्ञान हो सकता है । श्री महाराजा भर्तृहरिके बनाये १–नीतिशतक २–वैराग्यशतक ३–शृङ्गारशतक पर आपने स्वतन्त्र भावार्थ लिखा है । इस भावार्थ में हमारे चरितनायकके शुद्धान्तःकरण का अनुभव विशेष कर देखने योग्य है ।

२१—सनातनधर्म के सिद्धान्तों के समर्थन में और आ० समाजके खण्डनमें हमारे चरितनायक द्वारा लिखी गई पुस्तकों की संख्या भी कम नहीं है । ब्राह्मणसर्वस्व मासिकपत्र तो इन विषयों के लिये आपका प्रधान आयुध था ही पर

भाष्य लिखा था, इस के सिवाय कई पुस्तकों की स्वतन्त्र रचना भी की थी पर उन ग्रन्थों के विषय में कोई सम्मति देना इस लिये व्यर्थ है कि पहिली रचना अब प्राप्त नहीं, द्वितीय आप स्वयं भी अपनी पहिली रचनाको रद्द कर चुके थे।

२३–आपने जो २ ग्रन्थ बनाये तथा लेख लिखे उन का सामान्य दिग्दर्शन ऊपर कर दिया गया है अब इस सम्बन्ध में हमें एक केवल एक बात का प्रकट करना और शेष है वह एक नई बात है संस्कृतज्ञ विद्वानों में ऐसे मनुष्य बहुत निकलेंगे जिन्हें मातृभाषा हिन्दी से अनन्य अनुराग हो संस्कृतके धुरन्धर विद्वान् होते हुए भी आपको हिन्दी से अनुपम प्रेम था, आपने एक बार हिन्दी की एक का आल्हा छन्दों में बनाई थी। जब कि बंगाल में लार्ड के शासन काल (सन् १९०५) में स्वदेशी का आन्दोलन था तो उसी समय आप ने यह विचार किया कि साध शिक्षित लोगोंमें आल्हाका खूब प्रचार है यदि आल्हा में स्वदेशोद्धार सम्बन्धी बातें लिखी जांय तो सर्वसाध की रुचि स्वदेशकी तरफ जा सकेगी। इसी विचारको ल रख कर आपने इस कविता की रचना की थी यद्यपि पूर्ण नहीं है तथापि जितनी कुछ है वह पाठकों के मन मोद का कारण होगी, दैवयोग से आपके रद्दी काग हमें यह मिल गई है अतः उसे अविकल रूप से प्रक करते हैं।

(अथ पञ्चदेवोपासना मङ्गलाचरणम्)

सुमिरन करलेव उन गणपतिको जिनको विघ्नविनाशक न
सुमिरन भूल्यो गणनायकको रावों समझि विघ्नगये बा
जो कछु काम करन हम चाहत अपने हिय को करें वि
तामें विघ्न बहुत दीखत हैं जिनको कहूं न पारावार।

विघ्न हरैवे को दुनिया में, प्रगटे लम्बोदर महराज।
उनका पूजन पहिले करियो तासों सिद्ध होंय सब काज ॥३॥
जैसे सूरज के उगने पर अन्धकार सब जात नशाय।
तैसेहिं गणपति के पूजन से सब विघ्नों का मुंह नशाय ॥ ४ ॥
सांची मानो चित में धरलेउ श्रद्धा सहित करो अवधार।
देवों का जब तुमको मिलि है तबही हुइ है देश सुधार ॥५॥
फिर तुम सुमिरो भूतनाथ को जो भूतन की देत नशाय।
उन वरदान दियो त्रेता में रावण सब को लियो दवाय ॥६॥
तब गौ घात बढ्यो भारत में अरु बह चली रकत की धार।
धर्म कर्म सब ठंडे पड़ गये चहुंदिश मच गयो हाहाकार ॥७॥
दंडक वन में तप करने को जो रहते थे ऋषी महान्।
रावण कुल के सब दैत्योंने उनको किये रुधिर को पान ॥८॥
उनकी हड्डी संचित कर दईं जो पर्वत के ढेर दिखांय।
हाहाकार मच्यो भारत में सबरे देव गये घबराय ॥९॥
हाय विधाता अब क्या हुइ है वैदिक धर्म रहैगो नांय।
ऐसे संकट में देवों ने सब मिलि कीन्हों यही विचार ॥१०॥
आदिदेव का वर मिलने से रावण सबकों लियो दवाय।
शरण गहो तुम उन ईश्वरकी मारग वे ही देंय बताय ॥११॥
करी अस्तुती सब देवन ने सब मिलि गये बड़े दर्बार।
विनय सुनाई तब प्रभुवर को कैसेहुं हमको लेहु बचाय ॥१२॥
वैदिक धर्म सबहि नसि जैहै फिर कोई नाम लेन को नांय।
तुम वरदान दियो रावणको तासों धर्म लोप हुइ जाय ॥१३॥
आदिदेव तब बोलन लागे सुनियो देवो ध्यान लगाय।
जो कोई प्राणी करै तपस्या मन वच काया लेइ थकाय ॥१४॥
अच्छो फल ताको मिलि जैहै जो अधिकार मुताबिक होय।
देव असुर को भेद जो होवे तब तो पक्षपात हुइ जाय ॥१५॥
नियम विधाता को यह ही है कर्म अनुसार लहैं सब कोय।
देव दानवों से भय मानो रावण अभय लियो वरदान ॥१६॥

मानुषगण को तुच्छ मानिके सोसौं नां कोई कारी विचार॥
बुरे कर्म रावण के बड़ गये समझौ निकट ताशु संहार ॥१७॥
विष्णू रूप धरि मानुष को सब दैत्यन को दैंय नशाय ।
यही विधाता ने रचि राखी एक हू दैत्य बचे तो नांय ॥१८॥
तबहीं रघुवंशी दशरथ के विष्णू आय लियो अवतार ।
सब दैत्यनको मारि गिरायो जिनको बीज नाश है जाय ॥१९॥
गौ विप्रन की रक्षा हुय गई वैदिक धर्म दियो फैलाय ।
यज्ञ दान फिर होने लग गये जिन बिन मही रही दोलाय ॥२०॥
फिर तुम सुमिरो विष्णुदेव को जो भक्तन को लेंय बचाय ।
जब २ भीर पड़ी भक्तन पै तब २ वेही बने सहाय ॥ २१ ॥
एक समय मथुरामण्डल में मची कंस की बड़ी पुकार ।
गौ विप्रन की हत्या करि चहुंदिश हुय गई हाहाकार ॥२२॥
कोई न नाम लेय देवन को असुरन डंका दयो पिटाय ।
हमहिं विधाता है या जग में हमसे बड़ो और है नांय ॥
असुर रूप सब संग्रही हुय गये असुर ही असुर छये संसार ।
मानुष तन धरि विष्णु प्रगटे मथुरा धाँय लियो अवतार ॥२४॥
बालकृष्ण के तब नाशन को असुरन बहुतक करे उपाय ।
अंश रूप से बहुतक हुय गये पूर्ण ब्रह्म कृष्ण भये आय ॥२५॥
उनको नाशक तीन लोक में कबहूं कोइ होन को नांय ।
उनकी किरपा जिनपर हुइ है वेहू अजर अमर हुइ जांय २६
चौथे सुमिरूं जगदम्बा को जिन दैत्यन को दयो मिटाय ।
ऐसे दैत्य बढ़े या जग में जिनसे देव गये घबड़ाय ॥ २७ ॥
करी अस्तुती जब देवन ने देवी तबहिं प्रगट भई आय ।
नाश करायो उन असुरन को रक्तबीज से दये मिटाय ॥२८॥
करी प्रतिज्ञा तब देवी ने सब देवन को दई सुनाय ।
जब २ असुर बढ़े भारत में दानव सब को लेंइ दबाय ॥२९॥
तब २ प्रकटूंगी या जग में सब दैत्यन को देंउ नशाय ।
सुमिरन करिके या मातांको चरणन शीश नवाओ जाय ॥३०॥

मात भवानी मेरे हिरदे में बैठो अटल रूप से आय ।
देवो बल अब हमको मिलि है तब ही हुये है काज हमार ॥३
घट २ बैठी हो तुम सब के बुद्धि रूप से रहीं विराज ।
यही याचना है अब तुमसे बुद्धि एकसी करदेउ आज ॥ ३२
वैर विरोध मिटै भारत से सब मिलि करें देश उपकार ।
पराधीनता का दुःख जग में बढ़ते २ भयो अपार ॥ ३३ ॥
भारतवासी सब मिलि जावें अपने सभी संभारें काम ।
सुख समृद्धि की होवे वृद्धि रहै कष्ट को कहूं न नाम ॥ ३४
चला स्वदेशी जो भारत में दिन २ बाढ़े वही विचार ।
ऐसी सुमती हमको दे देउ होइबो परै न हमकूं भार ॥ ३५ ।
फिरि मैं सुमिरों सूर्यदेव को जो हैं सकल जगत् के प्रान ।
परब्रह्म नारायण ये ही सब वेदन में किये बखान ॥ ३६ ॥
सब के मन में श्रद्धा बाढ़ै सूरज उगत ही ध्यान लगाय ।
बढ़े स्वदेशी धन सम्पत्ती सब निर्धनता जाय विलाय ॥ ३७॥
सूर्यदेव नारायण मेरे तुम हिरदे में करौ निवास ।
ऐसी सुमती हमकूं दे देव जासें होय फूट को नाश ॥ ३८ ॥

(इति पञ्चदेवोपासना)

पञ्चम प्रकरण ।

पात्रे त्यागी गुणे रागी संविभागी च बन्धुषु ।
शास्त्रे योद्धा रणे योद्धा पुरुषः पञ्चलक्षणः ॥

आपके शास्त्रार्थ आदि ।

आपके निम्नलिखित शास्त्रार्थों तथा यात्राओं से पता लगेगा कि आपने न केवल लेख द्वारा ही सनातनधर्मकी सेवा की किन्तु वक्तृता द्वारा भी आपने बहुत कुछ सनातनधर्मका कार्य किया था। इन शास्त्रार्थों से यह भी ज्ञात हो जायगा कि आ० समाजके सभी प्रसिद्ध २ पण्डित भिन्न २ समयों में आपके सन्मुख आकर निरस्त हो गये थे। आ० समाज के कर्त्ताओं की पोल जैसी आपने खोली और सनातनधर्म शास्त्रोंमें जो सञ्जीवनी शक्ति आपने सञ्चारित की वह पहले इस रूप में कभी न दीख पड़ी थी।

१—शास्त्रार्थ आगरा।

यह शास्त्रार्थ सं० १९५८ वि० में हुआ। आप ने आर्यसमाज परित्याग करने के पीछे धर्मान्दोलन का कार्य अपने हाथ में लिया। सब से पहिले आपने मासिकपत्र "आर्यसिद्धान्त" भाग १० अङ्क ११ में आपने इसकी सूचना निकाली थी।

सं० १९५७ में जब कि इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में सनातन धर्म सभाओं का बृहद् अधिवेशन हुआ था तो आपके साथ ला० मुन्शीराम, सेठ लक्ष्मीराम, मुन्शी नारायणप्रसाद आदि आर्य सामाजिक पञ्जाबी तथा युक्त प्रदेशीय नेताओं ने प्रतिज्ञा की थी कि फिर आगरे पर हम लोग आपसे विचार करेंगे। परन्तु उन्होंने अपने वचन का प्रतिपालन न किया।

उन्हीं दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा मुरादाबाद ने इसके विपरीत यह घोषणा निकाल दी हमने इन (पं० भीमसेन

मना) को आ० समाज से पृथक् कर दिया। जब आपने दो डेढ़ वर्ष पूर्व ही से डंके की चोट से आ० समाज का स्पष्टरूप से परित्याग कर रक्खा था फिर आ० समाजने न जाने ऐसी घोषणा निकाल कर क्यों हास्यास्पद कार्य किया? अस्तु।

ऐसा होतेही आपका धार्मिक उत्साह और भी अधिक जागृत हो उठा, अब आपने देशाटन के द्वारा वेदोक्त धर्म के प्रचार करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उन दिनों आगरा आर्यसमाज के इक्कीसवें वार्षिकोत्सव होने का समय निकट था। फाल्गुन संवत् १९५८ (फर्वरी सन् १९०१) में आ० समाज आगरा ने आप के साथ मृतकश्राद्ध पर विचार करने का निश्चय किया। निस्सन्देह हम आर्यसमाज आगरा के इस उत्साह की प्रशंसा किये बिना न रहेंगे क्योंकि जिस समय पञ्जाब तथा युक्तप्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभायें केवल कूटनीति का आश्रय लेकर धर्मान्दोलन से विमुख बनी हुई थीं तो आ० समाज आगरा ने इतना साहस उस समय किया तो सही। इस का मूल कारण हमारी समझमें जहां तक आया है वह यह है कि उन दिनों आर्य समाज आगरा में मन्त्री का पद एक सुयोग्य और असाधारण व्यक्ति के हाथ में था। उनका शुभ नाम बा० कृपाशङ्कर एम० ए० है आप संस्कृत में भी बड़े योग्य हैं। उन दिनों आप आगरा कालेजमें अध्यापक का कार्य कर रहे थे।

यह शास्त्रार्थ केवल तीन दिवस तक हुआ था। और प्रति दिन प्रातःकाल तीन घण्टे तक लेख द्वारा उत्तर प्रत्युत्तर प्रत्येक पक्ष से होते रहे थे। सायंकाल को दोनों ओर के विद्वान् डेढ़ २ घण्टे तक व्याख्यानों द्वारा अपने २ पक्षका समर्थन तथा प्रतिपक्ष का खण्डन किया करते थे।

इस शास्त्रार्थ में आ० समाज के जिन विद्वानों ने आपके साथ प्रतिस्पर्धिता की थी उनमें मेरठ के पं० तुलसीरामजी ही मुख्य थे यों तो उनकी सहायतार्थ पं० देवदत्त शास्त्री कानपुर वाले तथा अन्य भी आं०स० के उस समय के सभी प्रसिद्ध २ विद्वान् भी विद्यमान थे। पं० तुलसीराम जी तीसरे दिन प्रातः शास्त्रार्थ के बीच में से ही मेरठ चले गये तो आपने भी शास्त्रार्थ बन्द कर दिया।

दोनों ओर के लेखों की पुस्तकें आ० समाज तथा ब्रह्मप्रेस से मुद्रित हो चुकी हैं कि जिन्हें पढ़कर हमारे पाठक निर्णय स्वयं कर सकते कि कौन पक्ष प्रबल रहा। परन्तु एक वार्ता का निश्चय होना उक्त पुस्तकों से होना असम्भव ही है। वह यह कि आ० समाज के स्थान में और आर्य सामाजिक जनसमुदाय के बीच में आप अकेले जिस समय सिंहनाद करते हुए अपने व्याख्यानों में गर्जते थे तो यही जान पड़ता था कि मानों कौरवों की सभा में स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् व्याख्यान दे रहे हैं अथवा आपकी मुखमुद्रा पर मानों स्वयं श्री शंकराचार्य जी आकर विराजमान हो रहे हैं यही भासित होता था। यह लेखक भी स्वयं उन दिनों आगरा में था और सौभाग्यवश इस विचित्र तथा अलौकिक दृश्य का अनुभव निज नेत्रों से कर रहा था। श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा आ० समाज ने उस समय तक अपने मृतक पितरों का जो प्रकोप अपने खण्डन द्वारा किया था मानों उसका बदला लेने के लिये ही उन्होंने आपके शरीर में अपना आवेश कर रक्खा था। इस शास्त्रार्थ के अवसर पर श्री सानू ब्रह्मचारी जीवनदत्त जी भी आपके साथ थे। उन्होंने निज नेत्रों से यह बात देखी थी कि पं० तुलसीराम जी को नक़ल करने का काला कागज़ दिया गया था परन्तु आं०स०

आगरा ने वैसा कागज आपको न दिया । लेखबद्ध शास्त्रार्थ में नकल का रखना अत्यन्त आवश्यक होता है अतः आप को प्रत्युत्तर देने के अतिरिक्त नकल करने में भी द्विगुणित समय लगता था । पं० तुलसीरामके समयकी बचत आ० स० ने चालाकी करके करदी थी तौ भी आपने अकेले ही इतना लेखबद्ध कार्य किया कि पं० तुलसीराम घबरा गये और बीच शास्त्रार्थ में ही आगरा छोड़ मेरठ चले गये । उक्त ब्रह्मचारी जी का यह भी कथन है कि हमने कई आ० समाजियों को वहां यह भी कहते सुना था कि यदि स्वयं स्वा० दयानन्द सरस्वती जी आवें और मृतक श्राद्ध को सिद्ध करदें तौ भी हम इसे कभी न मानेंगे । इत्यादि ।

२—पञ्जाब (अलीपुर) यात्रा ।

पञ्जाव प्रदेशान्तर्गत मुजफ्फरगढ़ जि० में एक अलीपुर नाम तहसील है । आ० समाज का उत्सव वहां पर वैशाख सं० १९५९ में निश्चित हुआ था तो वहां सना० धर्मसभाने आप को भी उस समय बुला लिया था । जब आप वहां पहुंचे तो देखा कि चारों ओर के ग्रामोंकी आ० समाजी तथा सनातन धर्मी जनता वहां एकत्रित है । पं० आत्माराम जी जो उसी प्रान्त के निवासी हैं तथा जो पहले आ० समाजके उपदेशक भी थे परन्तु पीछे इन्होंने आ० समाज को त्याग दिया था, वे भी इस उत्सव के समय विद्यमान थे और उन्हों ने आर्य समाज के स्थानमें जाकर प्रश्न किया था कि स्वा० दयानन्द जी ने लिखा है कि गायत्री मन्त्र चारों वेदों में है सो आर्य समाज का कोई विद्वान् हमें उसे अथर्ववेद में दिखा देवे। इस पर कोई ठीक उत्तर न दे सका । उक्त पं० आत्माराम तथा मुलतान निवासी पं० ठाकुरदासने धर्मसभामें व्याख्यान देते हुए अनेक प्रकारसे आ० स० के सिद्धान्तोंकी पोल खोली तदनन्तर आप के भी व्याख्यान हुये । आप के व्याख्यानों

का मुख्य विषय यह था कि मैंने आ० समाजको क्यों छोड़ा? जिसमें आपने लोगों को समझाया था कि आ० समाज वेद पढ़ने और यज्ञोपवीत पहनने का अधिकार शूद्र अतिशूद्र (चर्मकार महतर) तक को बताता है हमने इसे बहुत कुछ सुधारना भी चाहा परन्तु जब देखा कि ऐसा होना असम्भव है तो हमने आ० समाजको त्याग दिया। पहले आ०समाज में भंगी चमार आदि का न जनेऊ होता था और न द्विज लोग उनके हाथ का पकाया भोजन ही खाते थे परन्तु आ० समाजी लोग अब आचारभ्रष्ट होने लगे हैं और ब्राह्मण कन्याओं का विवाह क्षत्री लड़कों के साथ करना आरम्भ कर दिया गया है तथा विधवा विवाह आदि कुकर्म लोक शास्त्र के विरुद्ध होने लगे हैं इस लिये आ० समाज में रहने का अच्छे लोगों का कार्य नहीं है। अलीपुर से आप फिर इटावा को सीधे चले आये।

३—मुंगेर शास्त्रार्थ (सं० १९६०):

सनातनधर्म सभा मुंगेर के साथ यहां के आ० समाज ने शास्त्रार्थ करने का कोलाहल बहुत दिनों से मचा रक्खा था, पं० आर्यमुनि आदि सब उपदेशक मुंगेर में पहुंच जाय ऐसी घोषणा आ० समाजी पत्रों में पहिले से हो चुकी थी परन्तु जब बड़ी धूमधाम के साथ यहां की सनातनधर्म सभा का उत्सव पांच दिन तक होता रहा तो एक दिन पीछे ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी तथा स्वा० विश्वेश्वरानन्द जी केवल दो म-हात्मा पहुंचे। वृद्ध स्वा० आत्मानन्दजी यद्यपि पहले ही से यहां थे परन्तु उनका होना न होना समान था। क्योंकि वे शास्त्रज्ञ न थे।

सनातनधर्म सभाके उत्सवमें इटावा से आप (पं० भीमसेन शर्मा) मुरादाबाद से पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र आरा से

पं० सकलनारायण काव्य व्याकरणतीर्थ तथा बांकीपुरसे पताका धारी पं० रघुनाथ तिवारी आये थे। सनातनधर्म के साथ वहां के लोगों की बड़ी प्रीति थी इसी से सभा में वकील, मुख़्तार, रईस, ओहदेदार आदि सभी श्रेणीके लोग प्रतिदिन व्याख्यान सुनने आते थे। नाटक मण्डली आदि के खेल तमाशों को छोड़कर लोग व्याख्यान सुनने को इकट्ठे होते थे, पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र जी के व्याख्यानों की आकर्षण शक्ति का ही यह प्रभाव था। आ० समाजके लोग शास्त्रार्थ का पत्र व्यवहार इस समय भी कर रहे थे। शास्त्रार्थ के नियमों पर आ० समाज की ओरसे विवाद हो रहा था अन्तमें एकदिन एक प्रतिष्ठित रईस के स्थान पर दोनों ओरके विद्वान् इकट्ठे हुए और तीन घण्टे शास्त्रार्थ होना स्थिर पाया। नियम इस प्रकार निश्चित हुए थे कि दोनों पक्ष से २५। २५ मनुष्य आवें और केवल १०० प्रतिष्ठित नगर निवासी दर्शक की भांति सभा में बैठें। पहिले आ० समाजी लोग मूर्त्तिपूजा खण्डन पर एक घण्टे तक व्याख्यान देवें तदनन्तर एक घण्टे तक सनातनधर्म की ओर से उत्तर दिया जाय। पीछे आध घण्टा आ० समाज की ओर से तथा आध घंटा धर्मसभा की ओर से क्रमशः कथनोपकथन हो। इसके पीछे सभा समाप्त कर दी जाय कोई किसी का जय पराजय न जतावे, न कोई जय जयकार बोले और न ताली बजावे इत्यादि। समाजियों के विशेष आग्रहके कारण ही ऐसे क्लिष्ट नियम स्वीकार किये गये थे। आ० समाजियों ने सर्व साधारण के बीचमें शास्त्रार्थ करना स्वीकार न किया इस से वहां के बहुत मनुष्य दुःखी हुए थे। इन्हीं नियमों पर अन्त में शास्त्रार्थ हुआ। ऊपर जाने से सर्व साधारण रोके गये थे अतः उस समय सड़क पर ४। ५ सहस्र मनुष्यों की भीड़ हो रही थी।

प्रथम आर्य समाज की ओर से ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी ने मूर्तिपूजा पर एक घंटे तक व्याख्यान दिया जिसमें स्वा० शङ्कराचार्य कृत कृत उपनिषद् भाष्यादि पर अधिक बल दिया और यह दिखाना चाहा कि उक्त स्वा० जी ने ईश्वर का साकार होना तथा उसकी मूर्ति पूजा करना नहीं माना है। धर्मसभा की ओर से तदनन्तर पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र खड़े हुये और उनकी समस्त युक्तियों को काट कर ऐसा प्रभावशाली व्याख्यान दिया कि जिससे श्रोताओं को आर्यसमाज का पक्ष निर्बल तथा धर्मसभा का पक्ष प्रबल प्रतीत होगया। मिश्र जी के व्याख्यान के बीच में कोई बात ऐसी कही गई थी कि जिसके आनन्द में श्रोताओं ने झट तालियां बजादीं। व्याख्यान करके ज्योंही मिश्रजी बैठे तो नित्यानन्द जी कहने लगे कि हम शास्त्रार्थ न करेंगे क्योंकि नियम विरुद्ध तालियां बजाई गई हैं। इस पर प्रतिष्ठित श्रोता लोग बोले कि आनन्द के आवेश में आकर हमें नियमों का ध्यान न रहा। अतः आप हमारा अपराध क्षमा करें। नीचे खड़े लोगों को ज्योंही तालियों का शब्द ऊपर से सुनाई दिया कि सहसा सहस्रों तालियां सड़क पर बज उठीं। पुनर्वार नित्यानन्द जी फिर खड़े हुए इस समय उनकी मुख-मुद्रा फीकी थी, उनसे अपना पक्ष ठीक २ कहतेभी इस बार न बन आया, जैसे तैसे आधघंटा पूरा करके बैठ गये।

इसके पीछे फिर मिश्र जी की बारी आई तो उन्हों ने नित्यानन्द जी के समस्त युक्तिजाल को तुरन्त काटकर यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय के मन्त्रों से शतपथ ब्राह्मण से, तथा श्रौत सूत्रों से, अनेक प्रमाण बोलते हुए स्पष्ट सिद्ध कर दिखाया कि मूर्तिपूजा वेद प्रतिपादित है।

अन्तमें स्वा० विश्वेश्वरानन्द जी ने कहा कि हमें पांच मिनट का समय दिया जावे इस पर समस्त लोगों की सम्मति हुई कि जितने समय का नियम हुआ था वह होचुका अब समय किसी को न मिलेगा, अतः सभा विसर्जित हो गई। नित्यानन्द जी आदि की आकृति पर से साधारण लोगों को भी उनकी पराजय का स्पष्ट ज्ञान रहा था। इस शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में एक बात लिखना अभी शेष है कि जब आप इटावा से मुंगेर चलने को उद्यत हुए तो मुंगेर से एक पत्र डाक द्वारा आपको इटावेमें मिला। उसमें लिखा था था कि धर्मसभा ने ३००० विज्ञापन बांटे थे इसलिये उस पर आर्यसमाज ने "लाइविल–केस" चला दिया है। धर्म सभा का उत्सव हाल में न होगा। इस समय आप न आवें नहीं तो झगड़ेमें पड़जाओगे। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रका भी पत्र आगया है वे बीमार हैं इस से वे न आसकेंगे इत्यादि। आपने इसे कपटपत्र समझकर संभालकर रख लिया था और मुंगेर पहुंचकर सभामें इसे सुनवाया था। इस चिट्ठीसे आ०स० की वञ्चकताका परिचय स्पष्टतया मिलता है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूपसे आपने इस शास्त्रार्थ को नहीं किया था तथापि आप ने पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र जी को परोक्ष–सहायता बहुत कुछ दी थी।

४–बम्बई की प्रथमयात्रा।

सन् १९०१ में आपने भारतकी सर्वश्रेष्ठ वाणिज्य नगरी बम्बई में पदार्पण किया था उस समय वहांके प्रसिद्ध महात्मा श्रीरामेश्वरानन्द ब्रह्मचारी ने वहां एक विद्वत्परिषद्का आयोजन किया था। इस सभामें कई विवादग्रस्त प्रश्नोंका निर्णय होने को था। एतदर्थ भारतवर्ष के प्रसिद्ध २ विद्वानों का निमन्त्रण इस सभा में किया गया था। काशी से महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री, कुरुक्षेत्र से पं० गरुड़-

श्वज शास्त्री, इटावा से हमारे चरितनायक वेद व्याख्याता श्री पं० भीमसेन जी शर्मा, जामनगर काठियावाड़ के छोटू-भाई शास्त्री, बम्बई एलफिंस्टनकालेजके पं० मानूराम शास्त्री आदि प्रसिद्ध २ विद्वान् इस समय एकत्र हुए थे। बम्बई के प्रसिद्ध सार्वजनिक स्थान माधवबागके विशालहालमें ३ दिन तक सभा हुई। समागत विद्वानों ने अपने २ निबन्ध विवादग्रस्त प्रश्नों पर पढ़े और अपने २ विचार प्रकट किये हमारे चरितनायक ने भी इन प्रश्नों पर सुललित संस्कृत में एक निबन्ध लिख रक्खा था, सभा में वही निबन्ध सर्वोत्तम माना गया, द्वितीय दिन आपने संस्कृत में मौखिक भाषण करते हुए इन प्रश्नों पर अपने विस्तृत विचार प्रकट किये। आपके किये निर्णय पर सभी विद्वन्मण्डली प्रसन्न हुई। पं० शिवकुमार शास्त्री ने गद्गद् होकर कहा कि इन प्रश्नों पर जो निर्णय वेद शास्त्रानुसार श्री पं० भीमसेन शर्मा ने किया है उसके सर्वांश से हम सहमत हैं और हम अपनी सम्मति पृथक् देने की आवश्यकता नहीं समझते। विवादार्थ उपस्थित किये प्रश्न ५२ थे उनमें से कुछ का स्वरूप यह है।

१–वेद अपौरुषेय हैं या नहीं।

२–समुद्रयात्रा शास्त्रानुकूल है या शास्त्र विरुद्ध।

३–संन्यास लेने का अधिकार कलियुग में है या नहीं?

४–मांसभक्षण शास्त्रानुकूल है या शास्त्रविरुद्ध?

५–पतित परावर्त्तन की विधि शास्त्रों में मिलती है या नहीं?

६–पुराण श्री वेदव्यास निर्मित हैं या अन्य किसी ने बनाये हैं।

७–पुराणों में प्रक्षिप्तांश भी है या नहीं?

इत्यादि सभी प्रश्न सामयिक और अवश्य निर्णतव्य थे उपस्थित पण्डितों में मतभेद होना ऐसे सम्बन्ध में अनिवार्य था, परन्तु विचारानन्तर अन्तमें विद्वन्मण्डली का अधिकांश एक सिद्धान्त में सहमत हुआ, हमारे चरितनायक का एक व्याख्यान फ्राम जी कावस जी इन्स्टीटयूट हाल में भी हुआ, बम्बईके अनेक धनवान् सेठों ने अपने २ मकानों पर भी विद्वन्मण्डली को बुलाकर सबका आदर किया, इस प्रकार १५ दिवस तक हमारे चरितनायक ने बम्बई में निवास किया, अनेक धार्मिक सज्जनों ने आपसे मिलकर लाभ उठाया, वहां से आप सीधे इटावा चले आये।

५—द्वितीय बम्बई—यात्रा (सं० १९६१)

यहांके आर्यसमाज की ओर से जब बड़े समारोहके साथ सं० १९६१ में उत्सव होना निश्चित हुआ और पण्डित तुलसीराम आदि को बम्बई बुलाया गया तो वहां के सेठ साहूकारों का अनुरोध देख कर आपको जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य जी ने बम्बई बुलाया था। आप आठ दिन तक वहां रहे थे, और पांच व्याख्यान दिये थे। प्रति दिन ५। ६ सहस्र श्रोता आते थे। सभा माधवबाग में होती थी। आ० स० के मन्तव्यों का प्रतिदिन खण्डन होता रहा और शास्त्रार्थके लिये भी चैलेञ्ज दिया गया। ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी उस समय वहीं थे परन्तु ये शास्त्रार्थ के लिये उद्यत न हुए। मुंगेर की पराजय को अभी एक वर्षभी न हो पाया था। अतः उक्त ब्रह्मचारी जी का साहस सामने आने का न हुआ। इस महानगरी में सनातनधर्म की जड़ नये रूपसे इस वार पुष्ट होकर आर्यसमाजका आतङ्क सदाके लिये नष्ट करदिया गया।

६—काठियावाड़ (राजकोट) यात्रा।

राजकोटमें जिस समय संवत् १९६१ में श्री द्वारका शारदा पीठ के श्रीमान् जगद्गुरु (श्रीशङ्कराचार्य) जी पधारे थे

तो उन्हीं दिनों आ० स० के पं० आर्यमुनि वहां पहुंचे थे। इन्हों ने उक्त श्री जगद्गुरु से शास्त्रार्थ करना चाहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि हम शास्त्रों के ज्ञाता द्विजवर्णीय विद्वानों से शास्त्रार्थ कर सकते हैं परन्तु तुम न तो द्विज ही हो और न तुम न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र तथा व्याकरण शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता हो। लोगों से सुना गया है कि तुम्हें लघुकौमुदी तक नहीं आती है इधर नगर के निवासियों ने आपको भी तार देकर बुला लिया। वहां आपको आया देख पं० आर्यमुनि ने शास्त्रार्थ से सर्वथा निषेध कर दिया।

इस अवसर पर राजकोट में आपके व्याख्यानों से बड़ा प्रभाव उत्पन्न हुआ और श्री जगद्गुरु ने आपको वहां के नगर निवासियों की सम्मति-पूर्वक निम्न प्रशंसापत्र भी प्रदान किया।

मानपत्रम्।

पुरा सुराणां पदमर्दकेन दैत्यद्विजानामतिदुःखदेन।
तारासुरेणाखिलविश्वमध्ये सनातनं वैदिकवर्त्म नुन्नम् ॥१॥
तदार्तिखिन्ना द्विजदेवसंघाः श्रीशङ्करं शङ्करपादपद्मम्।
गत्वा शरण्यं निजदुःखमूलं सर्वं च तस्मै कथयांबभूवुः ॥२॥
विचिन्त्य तेषां वचनं स्मरारिस्तं तारकं हन्तुमणीमसेनम्।
श्रीभीमसेनं सुनियुज्य सर्वान् देवान्यथा शान्तिभुजश्चकार॥३॥
तथेदानीं देवद्विजकुलमयध्वंसकपरः।
समाजः संजातः शिव शिव कलौ कल्मषकरः॥
रसाद्देवा देवा दयमितकराणां पूज्यचरणान्।
भवाचार्यैनायान्यमुरवनिपष्ठोऽत्र शरणम् ॥ ४ ॥
सनातनं वैदिकधर्ममार्गं गोप्तुं तदीयं च यत्नं विहन्तुम्।
श्रीभीमसेना विदुषां वरिष्ठाः श्रीशङ्कराचार्यवरैर्नियुक्ताः॥५॥

कृत्वोद्घोषणभाषणं जनचये श्रीपल्लनाथस्थले ।
तत्रार्यादिसमाजपक्षदलनं वेदोक्तवाक्यैः कृतम् ॥
इत्थं लोकमनोनिकेतननिवासाधिष्ठितं संशयं ।
दूरीकृत्य वचोभिरेभिरधुनानार्दिकूषः स्थापितः ॥ ६ ॥
मूर्त्योः सपर्यां प्रतिपाद्य शास्त्रैरीशावताराविलसत्वमेवं ।
श्राद्धे तथावश्यकता मृतस्य सत्रस्य सिद्धिः सततं निरुक्ता॥७॥
श्रीभीमसेनाभिधपण्डितेभ्यः श्रुत्वा वयं भूपतिदुर्गवासाः॥
सद्धन्यवादाङ्कितमेतदेव सन्मानपत्रं समुदोऽर्पयामः ॥ ८ ॥

सं० १९६६ } निवेदक—राजकोट निवासी
सनातनधर्मावलम्बिगण ।

७—अलवर राजस्थान यात्रा (सं० १९६९)

सनातनधर्म सभा के उत्सवावसर पर आप अलवर राजधानी पधारे थे। पं० दीनदयालु शर्मा तथा स्वा० हंसस्वरूप जी भी वहां उस समय आये थे। तीन दिवस सभा हुई व्याख्यानों में श्री महाराजा साहब भी पधारे थे। ठाकुर साहब जावली श्री दुर्जनसिंह जी को स्वधर्म में बड़ा अनुराग है इस उत्सव के कराने में इन्होंने तथा पं० चन्द्रदत्त शास्त्री जी ने बहुत बड़ा भाग लिया था। इस यात्रा में पं० रुद्रदत्त मिश्र तथा यह लेखक भी आपके साथ अलवर गये थे।

८—झालरापाटन (सं० १९६६)

इस राजधानीमें जब सं० १९६६ में आर्यसमाजका उत्सव होना निश्चित हुआ तो वहां की सनातनधर्म सभाके मन्त्री बा० गोपालराव ने आपको बुलाना स्थिर किया। आप तदनुसार वहां पहुंचे तो पं० गणपति शर्मा उपदेशक आ०स० का व्याख्यान हो रहा था। इस व्याख्यान में उन्होंने ईश्वर को ज्योतिःस्वरूप बताया था तो आपने कहा कि इससे तो ईश्वर की साकारता स्पष्ट सिद्ध होगई।

फिर वहां के दर्बार की कोठी पर जिस समय आपका स्वतन्त्र व्याख्यान हुआ तो आपने पं० गणपति शर्मा के व्याख्यानकी समीक्षा करते हुए सनातनधर्मका महत्त्व भले प्रकार प्रदर्शित किया।

८ कलकत्ता यात्रा (सं० १९६६)

जब इस महा नगरीमें (सं० १९६६ में) सनातनधर्मावलम्बीय अग्रवाल सभा को स्थापित हुए केवल एक वर्ष ही हुआ था कि उसने वहां धर्म का बड़ा आन्दोलन उठाया। इस सभा के प्रधान संरक्षक बा० सूरजमल गोयनका थे व हैं। पं० व्रजवल्लभ मिश्र शास्त्री जि० अलीगढ़ निवासी उन दिनों वहीं पर थे इनका भी उत्साह तथा परिश्रम इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेख के योग्य था। इसी सभा का प्रथम वार्षिक उत्सव श्री विशुद्धानन्द विद्यालय में बड़े समारोह के साथ मनाया गया। इसी उत्सव में आप भी निमन्त्रित होकर गये थे। मूर्तिपूजा और अवतार विषयको ऐसी अकाट्य शास्त्रीय युक्तियों से अपने व्याख्यानों के अन्तर्गत आपने प्रतिपादित किया कि समस्त श्रोताओं के हृदय पटल पर आपकी असीम विद्वत्ता की छाप लग गई। पीछे जाकर समय आने पर वहां के विश्वविद्यालय में आपकी नियुक्तिका का कारण भी यही बनगई। एक दिवस जब आप पर व्याख्यान देते हुए आपने आ० स० की कुतर्कों का उत्तर दिया तो आ० स० ने स्वकीय मत का खण्डन होते देखकर शास्त्रार्थ की चर्चा चलाई। पं० तुलसीराम तथा अपने अन्य पण्डितों को भी बुलाया परन्तु वे न पहुंचे। आर्यसमाज का प्रभाव इस उत्सव ने इस नगरी में ऐसा मन्द कर दिया कि जबसे फिर सिर उठाने का साहस उसका नहीं होसका।

१०—मध्य-भारत (अमरावती)

अमरावती प्रान्त बरारमें जिस समय सं० १९६६ में आ० स० ने बल पकड़ा था तो आपको वहां जाना पड़ा था। पं० रामनारायण शर्मा वैयाकरण केशरी (महोपदेशक) भी उन दिनों वहीं ठहर रहे थे। आर्यसमाजके विद्वानोंमें पं० रुद्रदत्त (वरुआ) धामपुरी तथा स्वा० गिरानन्द (सूरदास) भी वहां पहुंच गये थे। पं० रुद्रदत्त के साथ पं० रामनारायण जी ने मूर्त्तिपूजा पर तीन दिन शास्त्रार्थ किया। इस शास्त्रार्थ में पं० रुद्रदत्त की कई अशुद्धियां पकड़ी गई थीं, निदान वे परास्त होकर नागपुर को चले गये। इस शास्त्रार्थमें जो मध्यस्थ माने गये थे जब उन्होंने पं० रामनारायण जी का पक्ष ठीक बताया तो आ० समाजी लोग इसपर चिढ़ गये अब उन्होंने अपने उपदेशकोंको तार भेजने आरम्भ कर दिये तब ला० शिवनाथ हकीम जी के बुलाने पर आप भी वहां जा पहुंचे। पांच छै दिन सभा हुई जिसमें आपने आ० स० का मिथ्यात्व और सनातनधर्म का महत्व भले प्रकार से प्रदर्शित किया। अमरावती में भी आ० स० की जड़ आप के जाने से ऐसी खोखली होगई कि फिर कभी उसने वैसा बल नहीं पकड़ा।

११—मध्यप्रदेश (खंडवा)

सम्वत् १९७६ में आर्यसमाजी पं० हनुमानप्रसाद ने जिस समय सनातन धर्म के विरुद्ध उक्त प्रान्त में कोलाहल मचाया तो स्वा० महानन्द सरस्वती और पं० ओङ्कारदत्त शर्मा वहां पहुंचे थे पं० हनुमानप्रसाद का शास्त्रार्थ के लिये इन दोनोंने आह्वान किया। वे संस्कृतज्ञ न थे अतः बम्बईसे पं० बालकृष्ण शर्मा बुलाये गये। ये बालकृष्ण शर्मा वही हैं कि जो प्रयाग में आपके शिष्यत्व में कुछ दिन पढ़े थे। निदान

दो दिवस तक इनके साथ आपका मूर्तिपूजा और आर्यसमाज के वैदिकत्व पर शास्त्रार्थ होता रहा। अन्तमें आपने चार २ घंटे प्रतिदिन शास्त्रार्थ करके मूर्तिपूजा को वेदोक्त और समाजीमत को वेदविरुद्ध सिद्ध कर दिया। आपने इस लेखकसे जब आप इटावा से अन्तिम बार नरवर जारहे थे तो प्रसङ्गानुसार कहा था कि हमारे शिष्यों में से कई ऐसे हैं कि जो आ० स० के अन्तर्गत कार्य कर रहे हैं परन्तु उन्होंने शास्त्रार्थों में कभी हमारा सामना नहीं किया। केवल बालकृष्ण ने ही ऐसा हमारे साथ किया आपके कथनसे उस समय हमें ऐसा अनुमान हुआ था कि उक्त बालकृष्ण शर्मा ने इस शास्त्रार्थमें कुछ असभ्यता तथा धृष्टता प्रकट की होगी जो कि शिष्य के नाते से उन्हें कदापि करनी उचित न थी सिद्धान्त-भेद होने से सभ्यता तथा शिष्ट मर्यादा को तिलाञ्जलि देना केवल मूर्खों का कार्य माना जाता है।

१२—मध्यप्रदेश बुरहानपुर। सं० १९६८

संवत् १९६८ में आप बुरहानपुर भी गये थे। वहां इच्छापुर के ठा० धनसिंह वर्मा के यहां बारह क्षत्रिय कुमारों का यज्ञोपवीत हुआ था। उधर क्षत्रिय वैश्यों के यज्ञोपवीत होने में दाक्षिणात्य ब्राह्मण बाधा करते हैं। अतः इधर से कई पण्डित बुलाये गये थे। काशी से पं० मन्नूलाल जी वेदपाठी तथा कानपुरसे रामचन्द्र जी वाजपेयी, संस्कार कराने गये थे। संस्कार सम्बन्ध में धर्मोपदेशार्थ इटावा से आप बुलाये गये थे तथा मुरादाबाद से पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र एवं हाथरस से सुकवि सुधाधर जी, तथा पं० कन्हैयालाल जी व पं० रामस्वरूप (सम्पादक सनातनधर्म पताका) भी सम्मिलित हुए थे। इस विद्वन्मण्डली के उपदेशामृत की वृष्टि से मुख्यतः आपके व्याख्यानों से उस प्रदेश में धर्म-वृक्ष की सूखी जड़ फिर हरी भरी होगई।

१३—शास्त्रार्थ हाथरस। सं० १९६९

चैत्र शुक्ला द्वितीया व तृतीया को हाथरस की संस्कृतोन्नतिकारिणी सभा का उत्सव था, इस सभा द्वारा असहाय अनाथ ब्राह्मण बालकोंका यज्ञोपवीत संस्कार प्रतिवर्ष किया जाता है। सं० १९६९ में इस सभा ने हमारे चरितनायक वेदव्याख्याता जी को तथा मथुरा से पं० दामोदर शास्त्री को बुलाया था। हाथरस के समीप वहां के आर्यसमाजियों ने एक कन्या गुरुकुल खोल रक्खा था, इस गुरुकुल में कन्याओं का यज्ञोपवीत कराया जाकर उन्हें पढ़ाया जाता है जब हमारे चरितनायक हाथरस में पधारे तो वहां के अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों ने पं० जी से पूछा कि कन्याओं का यज्ञोपवील कराके पुरुषों के तुल्य ब्रह्मचारिणी बनाके पढाना क्या वेदादि शास्त्रों के अनुकूल है?।

पण्डित जी ने उत्तर दिया कि कन्याओं का यज्ञोपवीत कराना और पर पुरुषों के आधिपत्य में पढ़ानेके लिये उनको सौंपना ये दोनों ही काम धर्मशास्त्रों के विरुद्ध हैं। पण्डित जी का यह उत्तर सुनकर हाथरस के प्रतिष्ठित सज्जनों की यह सम्मति हुई कि व्याख्यान के समय सभा में ही समाजियोंकी इस वेद शास्त्र विरुद्ध प्रथाका खण्डन होना चाहिये तदनुसार सभा में ही वेदव्याख्याता जी ने इन सब बातों की समीक्षा की, सभामें अनेक समाजी भी बैठे हुए थे उन्हें यह खण्डन बुरा लगा, तब अगले दिन फंसे हुए मूर्ख समाजियों को सन्तोष दिलाने के लिये पं० रुद्रदत्त वरुआ धामपुर निवासी (जिन्हें समाजियोंने सम्पादकाचार्यका भी खिताब देरक्खा है) को बुलाया और शास्त्रार्थ करनेके लिये पत्र भेजा समाजी पण्डितों का अभिप्राय शास्त्रार्थ करने का नहीं था किन्तु यह अवश्य था कि किसी प्रकार नियमों के

चलेहें में दो एक दिन पिता दें और जब वेदव्याख्याता जी चले जावें तब कह दें कि हम तो तय्यार थे पर सनातनधर्मी उपदेशक भाग गये और इस प्रकार अपनी विजय दुन्दुभि बजादें, पर हमारे वेदव्याख्याता जी तो समाजियों की चालबाजी को अच्छी तरह जानते थे इससे पण्डित जी ने पत्र भिजवा दिया कि समाजी लोग आज ही रात्रि में ११ बजे व्याख्यान की समाप्ति पर इसी सभा में आकर शास्त्रार्थ कर लें हमें सब नियम स्वीकार हैं। ऐसा उत्तर जाने पर समाजी उपदेशकों ने शास्त्रार्थसे बचने के कई उपाय सोचे पर अन्तमें कुछ न हुआ शास्त्रार्थ को आना ही पड़ा।

रात्रि को करीब १० बजे पर समाजी लोग अपने उपदेशकों को लेकर सभा स्थल में आये, पहिले बहुत देर तक इसी पर विवाद होता रहा कि पूर्वपक्ष किसका हो, अन्तमें नियमानुसार पं० रुद्रदत्त समाजी को पूर्वपक्ष करना पड़ा उनके समीप स्पष्ट प्रमाण किसी भी शास्त्र का एक भी नहीं था जिसमें स्त्रियों को या कन्याओं को यज्ञोपवीत धारण कराने का विधान हो, समाजी ने एक युक्ति यह निकाली कि यज्ञादि कर्ममें द्विज स्त्रियों को मन्त्र बोलनेका अधिकार दिया गया है और बिना यज्ञोपवीत हुए किसी को मन्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं है इससे कन्याओं का यज्ञोपवीत सिद्ध होगया, इस पर वेदव्याख्याता जी ने कहा कि यह सामान्यतया उत्सर्ग नियम है कि बिना यज्ञोपवीत के मन्त्र बोलने का अधिकार नहीं। परन्तु (नापवादविषयमुत्सर्गो ऽभिनिविशते) इस व्याकरण नियमानुसार जैसे अन्य समय अनुपनीत बालक को मन्त्रोच्चारण का निषेध रहने परभी मनुजी अ० २ में कहते हैं कि—

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ।

यज्ञोपवीत संस्कार होने से पहिले यदि किसी बालक का पिता मर जाय तो अनुपनीत बालक भी पिता का पिण्डदानादि मन्त्र पढ़ के करे। यह अपवाद है जैसे यहां यज्ञोपवीत के विना मन्त्र पढ़ने का विशेषांश में अधिकार है वैसे ही स्त्री को यज्ञ में खास २ मन्त्र बोलने का अधिकार है। और स्त्री, तो संस्कार को प्राप्त द्विज की अर्द्धाङ्गिनी कहाने से स्वतः संस्कृत ही मानी जाती है उसको पृथक् यज्ञोपवीत धारण कराने की आवश्यकता भी नहीं है। तथा मनु जी ने भी अध्याय २ में कहा है।

वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया।

स्त्रियों का विवाह संस्कार ही पुरुषों के उपनयन के स्थान में है। पतिकी सेवा करना ही गुरुके समीप वास करना है। गृह का प्रबन्ध करना ही अग्निहोत्र है। जब यज्ञोपवीत के स्थान में साफ २ विवाह संस्कार लिखा है तो स्पष्ट सिद्ध है कि कन्याओं का यज्ञोपवीत सिद्ध नहीं।

समाजी उपदेशक इस पर बहुत घबड़ाये कि संस्कार विधि में स्वा० दयानन्द ने (उपवीतिनी) इस गृह्यसूत्र के पद पर भाषामें साफ लिख दिया है कि यज्ञोपवीतके तुल्य वस्त्र को डाले हुई कन्या को लावे। इससे स्वा० दयानन्द के मत से भी कन्याओं का यज्ञोपवीत सिद्ध नहीं। इत्यादि अनेक पूर्वपक्षों का मुंह तोड़ उत्तर होने से समाजियों का पराजय सभा को ज्ञात होगया। तब समाजी पं० ने अथर्ववेदका आधा मन्त्र प्रमाण देकर अपने पक्षको बलिष्ट समझा।

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

इस मन्त्र को समाजी ने पढ़कर यह सिद्ध करना चाहा कि यज्ञोपवीत लेकर कन्या ब्रह्मचर्याश्रम में रहे तत्पश्चात

युवा पति को प्राप्त हो। वेदव्यासमाता जी ने तुरन्त ही इस मन्त्रका निम्न उत्तरार्द्ध पढ़के इसकी संगति लगादी।

अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वोघासं जिगीर्षति।

वेदव्यासमाता जी ने कहा कि जैसे वैल ब्रह्मचर्य रखता हुआ ही स्वामी का कार्य करता है। घोड़ा ब्रह्मचर्य धारण करके ही घासकी इच्छा करता है, कामान्ध होने पर वे अपने २ कार्यों को छोड़ देते हैं उसी प्रकार व्यभिचार दोष से दूषित न हुई कन्या ही युवा पतिको प्राप्त होती है ब्रह्मचर्य नाम उपस्थेन्द्रिय निग्रह का है यज्ञोपवीत वा आश्रम का नहीं है जैसे वैल घोड़ों को कौपीन और यज्ञोपवीत धारण कराकर समाजी ब्रह्मचारी नहीं बनाते इसी तरह स्त्रियोंका भी यज्ञोपवीत नहीं होसकता इतना कहते २ करतलध्वनि होने तथा पुष्पवर्षा होने लगी। समाजियों का पराजय होगया।

१४—युक्त–प्रान्त।

युक्त प्रान्त (आगरा अवध) में तो आप अनेक स्थानों में समय २ पर गये थे जिनमें से निम्नलिखित केवल तीन चार स्थानोंका वर्णन यहां करना ही पर्याप्त प्रतीत हुआ है।

१५–पटना जि० इटावा।

संवत् १९६० में यहांके रईस श्रीयुत मिश्रीलाल जी मिश्र रईस ने अपने यहां कथा, होम, दान आदि कुछ धर्म कृत्य कराये तथा उसी अवसर पर धर्मोपदेशका प्रबन्ध किया था आप भी उसमें निमन्त्रित होकर सम्मिलित हुए थे। पं० देवदत्त जी कानपुर वालों की वहां प्रधानता थी और उन्हीं की निरीक्षणता में उक्त धर्म कृत्य हुए थे। उपनिषदों से कथा उन्हीं ने स्वयं सुनाई थी। उनके शिष्य पं० नन्दकि-

शोर जी व पं० प्रयागदत्त जी (उपदेशक आ० स०) भी आपने गुरु जी की सहकारिता के लिये उपस्थित हुए थे। एक दिन सायंकाल को जब सभा हुई और व्याख्यान हुए तो पं० प्रयागदत्त जी ने अपने व्याख्यानके अन्त में प्रस्ताव किया कि आप (पं० भीमसेनजी) यज्ञ विषय पर व्याख्यान देंगे। तदनुसार आपका व्याख्यान हुआ। आपने अपने व्याख्यान में विधि रहित यज्ञोंकी निकृष्टता दिखाते हुए यज्ञों का वास्तविक स्वरूप समझाया। तदनन्तर पं० नन्दकिशोर जी का व्याख्यान हुआ जिसमें उन्होंने सनातनधर्म के प्रतिकूल बहुत कुछ कहा। आपने उनके व्याख्यान का थोड़ा सा अंश तो सुना फिर सभा स्थान से उठकर अपने डेरे पर चले आये। अन्तमें पं० देवदत्त जी का जो कि उस सभाके सभापति भी थे व्याख्यान हुआ। उन्हों ने आपका नाम ले २ कर बहुत कुछ विरुद्ध कथन किया। मिश्रीलाल जी ने उन को ऐसा करने से रोका भी था परन्तु वे न माने।

दूसरे दिन प्रातःकाल लोगों ने आप से उक्त वृत्तान्त कहा तो आप बोले कि पं० देवदत्त जी को मेरे पीछे ऐसा कहना उचित न था। उनकी इच्छा हो तो सभा के बीच में शास्त्रार्थ क्यों न कर लेवें। जब यह बात लोगों में फैली तो मिश्रीलाल जी आपके पास आये और बड़े नम्रभाव से बोले कि शास्त्रार्थ (विवाद) से मेरे उत्सवमें विघ्न खड़ा होजायगा अतः आप क्षमा करें। इस पर आप तो सहमत होगये परन्तु पं० देवदत्त जी का कोप शास्त्रार्थ का नाम सुनकर ही ऐसा प्रचण्ड हो उठा कि उन्हों ने शान्ति धारण न की जब गोशत-दान के समय सब लोग इकट्ठे हुए तो पं० देवदत्त जी आपका नाम ले २ कर कोलाहल मचाने लगे। आप उस समय भी कुछ न बोले परन्तु मिश्रीलाल जी ने उन्हें

इस दुर्व्यवहार पर ही बहुत कुछ धमकाया और स्पष्ट कह दिया कि आप इसी समय चले जांय । आप मेरे बुलाये हुए पुरुषों का अपमान करते हैं । इस पर जब पं० देवदत्त जी उठ कर जाने लगे तो कुछ लोगों ने उन्हें समझा बुझा कर रोक लिया इसपर उनके शिष्योंमें से कोई २ तो चिल्ला कर रोने लगे कि हमारे गुरुका अपमान हुआ । इन लोगोंने वहां वेद-शास्त्र की विधि से विरुद्ध होम कराया था, वेदी तथा कुण्ड भी मनः कल्पित बनाये थे । अन्य बातों का तो कथन ही क्या है ।

१६-जलालाबाद-फर्रुखाबाद ।

संवत् १९६० में जिस समय वहां की धर्मसभा का उत्सव हुआ तो आप उसमें सम्मिलित हुए थे। आपने अपने आ० समाज त्यागने के कारण दिखाते हुए वहां पर कहा था कि आ० स० केवल वेद २ चिल्लाता है परन्तु वेद और वेदाङ्गों को कोई आर्यसमाजी यथार्थ में न जानता न मानता है। आपके व्याख्यान से वहां के लोगों में धर्म की ऐसी जागृति हुई कि सत्यनारायण की कथा कहने को उन दिनों समय पर पं० भी न मिल सके ।

१७-हरदुआगंज (अलीगढ़)

सम्वत् १९६१ में जब यहां की धर्मसभा का उत्सव हुआ था तो आप उस में गये थे । यहां एक आ० स० ने सभा के बीच में खड़े होकर प्रश्न किया था कि मनु जी ने श्राद्ध में गोमांस के पिण्ड देना लिखा है क्या सनातनधर्मी लोग इसे ठीक मानते हैं ? इसे सुनकर कुछ देरके लिये सभा में सन्नाटा छागया था पीछे आप खड़े हुए और बोले कि तुम झूठ बोलते हो, ऐसी बड़ी सभा में तुम्हें झूठ बोलते हुए लज्जा क्यों न आई ? दिखाओ मनु जी ने कहां ऐसा लिखा है ? इस पर लालटेन लेकर मनुस्मृति को कई आ० स० लोग मिलकर ढूंढने लगे पर वे कुछ पता न बता सके ।

६—षष्ठ—प्रकरण ।

दाने तपसि शौर्ये वा विज्ञाने विनये नये ।
विस्मयो नहि कर्त्तव्यो नाना-रत्ना वसुन्धरा ॥

आपका-गार्हस्थ्यजीवन ।

आपके जीवनका बहुत बड़ा भाग विद्याके प्रचार तथा धर्म के प्रसार से परिपूर्ण था। ऊपर लिखी घटनाओं से हमारे पाठकों को यह बात भले प्रकार से समझमें आसकती है तथा यह बात भी हमारे पाठक अब समझ चुके हैं कि आपका जीवन उसी श्रेणी के महानुभावों की गणना में है कि जिनका जन्म जगत् के कल्याण के लिये ही हुआ करता है। ऐसे महापुरुषों का गार्हस्थ-जीवन भी किस कोटि का उच्च होना चाहिये इसका भी अनुमान हमारे पाठक स्वतः कर सकते हैं तथापि दिग्दर्शनार्थ कुछ घटनाओं का यहां वर्णन करना हम आवश्यक जानते हैं। इन नीचे लिखी बातों को पढ़ने के पूर्व हमारे पाठकों को स्मरण कर लेना चाहिये कि वे किसी साधारण व्यक्ति के गार्हस्थ जीवन की घटनाओं को नहीं पढ़ रहे हैं अपि तु एक तत्त्वदर्शी (फिलासफर) के जीवन की बातें उनकी आंखोंके सामने प्रस्तुत की जा रही हैं:—

१—आपका स्वभाव ।

महात्माओं की प्रकृति के विषय में एक प्राचीन आचार्य का वचन * है कि जो लोग विपत्ति के समय धीरता, प्रभुता के समय क्षमा, विद्वानों के समूह में वक्तृता युद्ध के

---

* विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

समय पराक्रम, यश (नाम) के लिये इच्छुकता तथा पठन पाठन के लिये व्यसन (आसक्ति) अपने हृदय में रखते हैं वे ही वस्तुतः महात्माओं के प्राकृतिक गुणों से संयुक्त होते हैं। आपमें इनमें से प्रायः सभी गुण विद्यमान थे जिनमें से आपके विरक्ता आदि कई गुणोंका तो उल्लेख ऊपर होचुका है शेष गुणों का वर्णन हमारे पाठक आगे पायेंगे। यहां हम केवल इतना दिखलाना और चाहते हैं कि आपका स्वभाव बड़ा शान्त और गम्भीर था। जब कभी आप लेख आदिमें प्रवृत्त रहते थे तब तो यह स्वाभाविक था ही कि आपके ये गुण प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हों किन्तु जिस समय आप किसी मनुष्यसे वार्त्तालाप में प्रवृत्त रहते थे तब भी आपके ललाट पर स्वयं गम्भीरता मूर्त्तिमती होकर विराजमान रहती थी। आपका स्वर भी बड़ा गम्भीर था, मेघगम्भीर—वाणी जिसका कि वर्णन कथाओं में हमारे पाठक प्रायः सुना करते हैं उस की कुछ छटा आपकी वाणी में भी थी। आप जब कभी अट्टहास किया करते थे तो बड़ा ही मर्म-स्पर्शी तथा सौन्दर्यमय होता था। वाणी की शुद्धता, शरीर तथा मनकी शुद्धता आप में मानों विधाता ने कूट २ कर भर दी थी। जब कभी आप बड़े बड़े नगरों में भी जाते तो प्रायः यही यत्न किया करते थे कि पुरीषालय (पाखाना) में शौचार्थ न जाना पड़े। प्रयाग तथा इटावामें सदैव प्रातः सायं आप मैदान में शौच क्रिया को जाते थे। रोगी होने पर तथा जिस दिन कि आपका प्राणान्त हुआ उससे दो घंटे पूर्व भी आप नरवर में अपनी कुटी के बाहर लघुशंका करने को अपनी लाठीके सहारे गये थे। प्रार्थना कीगई थी कि रखदी जायगी उसीमें मूत्र त्याग कीजिये, तो इसे

सर्वथा अस्वीकार किया। वहां आपसे यह भी निवेदन हुआ था कि डाक्टरी औषधि का सेवन स्वीकार कर लेवें परन्तु आप इसे करने को भी सहमत न हुए।

आप प्रायः कहा करते थे कि "योऽर्थेशुचिः स शुचिः" अर्थात् शुद्धता अथवा पवित्रताकी यथार्थ कसौटी अर्थ (धनादि वस्तु) हैं जो मनुष्य अर्थ सम्बन्धमें शुद्ध व्यवहार रखता है वही शुचि (पवित्र) है। आपका समस्त व्यवहार इसी सिद्धान्त पर चलता था। ऋण आदिके लेन देन में आप इसी सिद्धान्तानुसार अटल भावसे चलते थे। अपने मासिक पत्रमें लोभ वश होकर कभी आप झूंठे लोगों के विज्ञापनों को न छपाते थे। सत्यधर्म पर आप बड़ी दृढता पूर्वक आरूढ़ रहते थे। क्रोध की दशा में बहुत से मनुष्य दुर्वचन गाली आदि मुखसे बोलने लगते हैं विद्वान् भी इस दोष से प्रायः नहीं बच सकते। जहां तक हम जानते हैं अपनी समस्त आयु में कभी भी आपने गाली किसी के लिये नहीं उच्चारण की। हर्ष और शोक दोनों समय में हमने प्रायः आपको समान ही पाया। आपके चरित्र में भगवद्गीता का निम्नलिखित वचन इस विषय में ठीक २ चरितार्थ होता था:—

"न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः॥"

[अ० ५ श्लो० २०]

आपने जितने लेख लिखे हैं उनका बहुत थोड़ा भाग ऐसा है जो घर पर लिखा गया है। इटावा में आप सदैव नगर के बाहर एक वाटिका में रहते हुए ही इस कार्य को किया करते थे।

२—विद्या-व्यसन।

जब तक आप प्रयागमें रहे तो छात्रों को सदैव व्याक-

रण; आदि शास्त्र पढ़ाते रहे। यहां पर जो पाठशाला थी उसका नाम "विश्व विद्यालय प्रयाग" प्रसिद्ध था। यन्त्रालय आदि के कार्य से जो द्रव्यलाभ आपको मिलता था उसे आप छात्रोंके पढ़ानेमें ही लगाते थे। इटावे में जब आप आये तो बहुत दिनों तक एक पा० शा० अपने निरीक्षण में आप चलाते रहे जिसका कि नाम "वैदिक पाठशाला इटावा" था आपके विख्यात शिष्य पं० श्यामलाल शर्मा *पहासू निवासी उसमें अध्यापन का कार्य बहुत दिनों तक करते रहे। ये बातें सं० १९५२ के निकट की हैं। इसी पा० शा० में पं० जीवनदत्त ब्रह्मचारी तथा उनके कई सहपाठी भी पढ़े थे। यह लेखक भी उन्हीं दिनों आपके " सरस्वती यन्त्रालय इटावा " में प्रबन्धकर्त्ता बन कर एक वर्ष तक रहा था। आप जब कलकत्ता विश्वविद्यालय में वेदव्याख्याता नियुक्त होकर पांच वर्ष तक रहे तो आपके घर पर निरुक्त आदि पढ़ने को कई ऐसे विद्यार्थी आया करते थे कि जिनका सम्बन्ध कालेज आदि से कुछ भी न था। आपने अनेकबार वेदों का स्वाध्याय किया था और अनेक वेदमन्त्र आपको कण्ठस्थ भी थे। परन्तु आप अपने सम्भाषणों में प्रायः मनुस्मृति और भगवद्गीता के श्लोक समय २ पर धारा-प्रवाह बोला करते थे। आप "आत्मज्ञान" की वृद्धि के लिये प्रतिदिन एकान्त में इन ग्रन्थोंका स्वाध्याय (पाठ) करते रहते थे। केवल लेखों तथा व्याख्यानों के लिये ही आप वैसा न करते थे। आपकी विद्या तथा स्वाध्याय आत्मोन्नति के लिये जितनी थी उतनी ही सांसारिक प्रवृत्तिके लिये

* नोट-ये गुरुकुल वृन्दावन की सेवा कई वर्ष तक करते हुए सं० १९७३ में स्वर्गवासी होगये। इनके अकाल काल कवलित होने का हमें बड़ा खेद हुआ है।

भी थी। आप उपनिषदों का विचार अपनी पूर्ण युवावस्था तथा व्यावहारिक जीवन में भी निरन्तर करते रहे थे। इसी लिये आप पूर्ण तत्ववेत्ताओं के स्वभाव से युक्त थे।

३—व्यवहार की दक्षता।

जो लोग लिखने पढ़ने का उच्च कोटि का कार्य करते हैं, उन्हें व्यवहार कार्यों में प्रायः कुशलता नहीं होती, विशेषतः संस्कृतज्ञों को। परन्तु आपमें यह बात न थी, आप ने नौकरी त्यागकर जब स्वतन्त्र रहते हुए कार्यारम्भ किया था तो आपकी अवस्था ३०—३१ वर्ष की थी। तभीसे आपने कार्यालय (यन्त्रालय पुस्तकालय) की स्थापना की। आप एक अच्छे प्रबन्धकर्त्ता थे। कर्मचारियों से पूरा व ठीक कार्य लेते हुए आप उन्हें सदैव सन्तुष्ट भी रखते थे। आप अंग्रेजी पढ़े हुए न थे परन्तु कानून कायदे जिनसे कि आपको काम पड़ता था सब याद रखते थे। यन्त्रालय (प्रेस) वालों के लिये कैसे २ कठिन कानून प्रचलित हुए उनसे बचते हुए कार्य करनेके लिये साधारण दक्षता (चतुराई) से कार्य चलाना सम्भव न था। आपकी दक्षता की पहचान उस समय भी लोगों को होजाती थी जब कि प्रतिपक्षियोंके साथ आप शास्त्रार्थों में प्रवृत्त होते थे। नियमावली बनाने में आप सिद्धहस्त थे। प्रबन्ध तथा शास्त्रार्थ आदि के जो नियम आपने समय २ पर बनाये थे वे अब भी मिलते हैं। उनसे आपकी दक्षता का पूर्ण परिचय मिलता है।

४—आपकी सन्तति।

अपने स्वर्गवास के समय आपने दो पुत्र छोड़े हैं ज्येष्ठ पं० ब्रह्मदेव शास्त्री जी की आयु ३० वर्ष की और कनिष्ठ पं० वेदनिधि शर्मा की २४ वर्ष की है। ज्येष्ठ का विवाह संवत् १९६० में और कनिष्ठका संवत् १९६८ में आपने किया

था, ज्येष्ठ पं० ब्रह्मदेव जी विद्वान् तथा सुशिक्षित हैं. आपने इसी वर्ष 'शास्त्री,' पदवी पञ्जाब यूनीवर्सिटी में परीक्षा द्वारा प्राप्त की है, कनिष्ठ पं० वेदनिधि जी ने यद्यपि अधिक परीक्षायें अभी तक नहीं दीं तथापि संस्कृतमें उनको अच्छा बोध है और यन्त्रालयके प्रबन्धकर्तृत्व कार्यमें भी बड़े निपुण हैं। ज्येष्ठ की सन्तान में एक पुत्र और दो कन्या हैं। इनके अतिरिक्त एक पुत्र चिरञ्जीव गयाप्रसाद और था कि जो संवत् १९७५ में कलकत्ते में छत पर से गिरकर और तीन दिवस तक अचेत रहकर पञ्चत्व को प्राप्त हुआ उसने केवल छह वर्ष की आयु पाई परन्तु बुद्धि का बड़ा चमत्कारी था। आपने सं० १९६९ में गया धामकी यात्रा की वहांसे आते ही इस पौत्र का जन्म हुआ अतः नामकरणमें आपने इसका भी समावेश किया था। विद्यमान पौत्रको आपने केवल चार पांच मास का छोड़ा है। जिस दिन आपने इटावा से अपना अन्तिम प्रस्थान किया तो इस पौत्र का निष्क्रमण संस्कार उसी दिन था। आपने बच्चे को अपनी गोद में लेकर स्वयं बाहर निकाला था, और गणपति, दुर्गा आदि देवों के स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए नगर से बाहर एक शिवालय में गये थे वहां शिव जी पार्वती जी तथा गणेश जी की मूर्तियों का साङ्गोपाङ्ग पूजन किया था। इस प्रकार निष्क्रमण का कार्य स्वयं समाप्त करके आपने भोजन किया और अनन्तर रेल पर चढ़नेको स्टेशन चले गये। यह लेखक स्वयं इस दृश्यको अपने नेत्रोंसे देखता हुआ अपने जन्मकी सफलता मानरहा था।

५—आपका धैर्य।

प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में अनेक अवसर हर्ष शोक के आते हैं अतः अपने जीवन में आपको भी अनेक

वार ऐसे अवसर प्राप्त हुए थे। आपको कई वार विपत्तियों का भी सामना करना पड़ा था। संवत् १९६७ (सन् १९१०) में ब्रह्मप्रेस पर प्रेस ऐक्ट का प्रहार हुआ और दो सहस्र की जमानत आपको देनी पड़ी थी उस समय आप को ऋण-ग्रस्त होना पड़ा था, और वड़ी चिन्ता करनी पड़ी थी। परन्तु आपने अपना धैर्य नहीं छोड़ा। संवत् १९५६ में और उसके पीछे तीन चार वर्ष तक भी आपको बड़ी आर्थिक क्षति उठानी पड़ी थी जब कि आर्यसमाज को त्यागकर आपने स० ध० की सेवा स्वीकार की थी। उस समय आपको कार्यालय बन्द कर देना पड़ा था। उससे चार वर्ष पूर्व जिस समय संवत् १९५२ में आपने प्रयाग छोड़ा और इटावा आये थे तो मार्गव्यय आदि में बहुत धन नष्ट हुआ। उस समय आपका कार्यालय "सरस्वती यन्त्रालय" के नाम से प्रसिद्ध था और उससे जो मासिक पत्र आप निकालते थे उसका नाम "आर्य-सिद्धान्त" था। फिर संवत् १९५९ में आपको नई सृष्टि रचनी पड़ी थी और कार्यालय का नाम "ब्रह्म-यन्त्रालय" तथा पत्रका नाम "ब्राह्मणसर्वस्व" रक्खा गया। एकवार इटावा में संवत् १९६२ में आपकी बहुत बड़ी चोरी भी होगई थी कि जिसमें आभूषण धन आदि सभी चोरी चला गया था।

इस प्रकार अनेक अवसर ऐसे आये कि जिनमें आपको भारी आर्थिक क्षति सहनी पड़ी। परन्तु ऐसी आपत्ति के समय में भी आपका उत्साह कभी मन्द न होता था, इसी लिये लक्ष्मी देवी सदैव आपके साथ रहीं।

"यत्रोत्साहसमारम्भो यत्रालस्यविहीनता,
नयविक्रमसंयोग-स्तत्र श्रीरचला ध्रुवम्,,

उत्साह के अतिरिक्त आलस्यत्याग, नीति तथा परा-

क्रम का होना भी सम्पत्तिशाली होने के लिये आवश्यक है सो ये गुण भी आपमें स्वाभाविक ही थे।

पारिवारिक शोक के समय आप न केवल धैर्य से ही काम लेते थे किन्तु आपकी स्वाभाविक तथा सूक्ष्म तत्व दृष्टि आपको ऐसे अवसरों पर भी निगूढ़ तत्वों को हस्तामलक की भांति प्रत्यक्ष कर दिखाती थी, इस सम्बन्धमें हम केवल एक घटना को उदाहरण स्वरूप नीचे लिखे देते हैं:—

"आपकी पुत्री जिनका नाम जयदेवी था और जो प्रयागमें सं० १९४२ में उत्पन्न हुईं और जिनका विवाह इटावा में रहते हुए आपने संवत् १९५७ में किया था जो संवत् १९६२ में मृत्यु को प्राप्त होगई। उनके शोक में आपने ब्रा० स० भाग ३ अङ्क ४ में एक लेख "इटावा में देवी का अन्तर्धान" नामक छपाया था। है तो यह एक शोकोद्गार, परन्तु बड़ा ही शिक्षाप्रद है। उसमें आपने जो दिखलाया है उसका सार यह है कि ऋग्वेद, के मण्डल १० और सूक्त १२५ में जगज्जननी महामाया का व्याख्यान है। महेश्वरी, परमेश्वरी, जगदम्बा, महादेवी, महामाया उसी प्रकृति देवी के नाम हैं। उसी ने इस जगत् में असंख्य रूप धारण किये हैं समस्त विद्यायें और समस्त स्त्रियां उसी के भेदों में से हैं:—

"विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः,
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।"

उसी जगदम्बा ने सं० १९४२ में अपना एक रूप "जयदेवी" नाम वाला प्रयाग में प्रकट किया था वह महादेवी की पुत्री देवी (सांसारिकपिण्ड) लोक व्यवहारानुसार सम्पादक ब्रा० स० की पुत्री कहायी। उसने पढ़ने लिखने, कसीदा काढ़ने गुलूबन्द मोजा आदि बुनने कपड़ा सीने तथा मूफ शोधने, इबारत लिखने बनाने आदि कामों में

योग्यता प्राप्त करली थी। विचार और स्वभाव नम्र शान्त तथा गम्भीर था, क्रोधका लेश भी न था, यह देवी किसीकी पुत्री, भगिनी, बहू, पत्नी, भ्रातृजाया, आदि सम्बन्ध प्राप्त करके पुनः उक्त सब सम्बन्धों को छोड़ कर विछुड़ गई, वस्तुतः जयज्जननी महामाया ने अपना जयदेवी रूप अपनेमें लीन कर लिया। हमारे पाठक इसीसे अनुमान कर सकते हैं कि शोकावसरों पर भी आपकी प्रतिभा शक्ति कैसे २ गूढ़ रहस्य प्रकाशित किया करती थी।

६—आपकी समदृष्टि।

आर्यसमाज के मन्तव्यों का जब से आपने खण्डन करना आरम्भ किया तो आ० स० का बच्चा २ तक आपको अपना कट्टर शत्रु समझने लगा। आ० स० पत्र आपमें अनेक मिथ्या दोषों का आरोप करने लगे। स्वयं ला० मुंशीराम जैसों ने कि जो आजकल स्वा० श्रद्धानन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं कई मिथ्या बातें छपा कर आपकी मानहानि की थी। एक अंग्रेज बैरिस्टर ने आपको उस समय यह सम्मति दी थी कि मानहानि का अभियोग (दावा) न्यायालय में चलाना उचित है कुछ लोग खर्च का भार उठाने को स्वयं तय्यार थे परन्तु फिरभी आपने ऐसा न किया। आपकी क्षमा के अनेक उदाहरण हैं परन्तु विस्तार भयसे यहां नहीं लिखे गये। यथार्थ बात तो यह है कि आपसे जो कभी एक बार भी मिल लिया वह इस बात को जानता होगा कि आप सुहृद्, मित्र, शत्रु उदासीन, मध्यस्थ, सज्जन, दुर्जन आदि सभीके साथ समान भावसे मिलते भेंटते थे। आप सदा श्रीकृष्ण भगवान् के नीचे लिखे गीतावचन को अक्षरशः चरितार्थ किया करते थे।

सुहृन्मित्रार्युदासीन-मध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

जैन, ईसाई, मुसलमान आदि किसी मत तथा सम्प्रदाय का कोई क्यों न हो आप सभी से सुहृद्भाव से बातें किया करते थे। आपकी घृणा बुद्धि किसी के भी प्रति न थी सब मत मतान्तर वालों की प्रीति प्रायः अपने मतके लोगों से ही अधिक होती दीख पड़ती है यह तो अकेला सनातनधर्म ही है कि जो समानता से सबके साथ प्रीति करता हुआ सबको 'स्वधर्म' पर चलने की घोषणा करता है। आप इसी सनातन धर्म के सच्चे उपदेष्टा थे, और सच्चा उपदेष्टा हम उसीको कहेंगे कि जो स्वयं अपने आचरण से अपने वचनकी सत्यता को चरितार्थ कर सके। वास्तव में आप जैसों ने ही सनातनधर्म का मुख इस संसार में उज्ज्वल किया है क्योंकि साधारण लोगों में धर्म की मर्यादा तभी चलती है जब कि श्रेष्ठ पुरुष उस पर स्वयं चलकर उन्हें दिखाते हैं:—

"यद्यदाचरति श्रेष्ठ-स्ततदेवेतरोजनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥"

७—कलकत्ता यूनीवर्सिटी से सम्बन्ध।

सं० १९६९ (जुलाई १९१२) में आप उक्त यूनीवर्सिटी के वैदिक लेक्चरार (वेदव्याख्याता) पद पर नियत हुए। इस पद पर पहिले बङ्गाल के प्रसिद्ध वेदज्ञ पं० सत्यव्रत सा-मश्रमी जी थे। उनके स्वर्गवास के अनन्तर किसी योग्य वेदज्ञ के न मिलने से यह पद कुछ दिनों तक रिक्त रहा। इसी समय आपकी वेदज्ञता का परिचय मिनेट कलकत्ते के प्रसिद्ध विद्याप्रेमी वा० ...

को पत्र द्वारा सूचित किया कि "कलकत्ता यूनीवर्सिटी का यह उच्च पद योग्य वेदज्ञ न मिलने से रिक्त है। सर्वसम्मति से आपका चुनाव इस पदके लिये किया गया है। यूनीवर्सिटी के अधिकारियों ने मुझे आज्ञा दी है कि यदि आप इस पद की शोभा बढ़ावें तो बहुत उत्तम हो, वेतन २५०) मासिक है। इसके सिवाय एशियाटिक सोसाइटी का भी काम आप कर सकेंगे,, इस पत्र को पाने पर अनेक इष्ट मित्रों और बन्धु बान्धवों ने आपको इस पद पर जाने के लिये प्रेरित किया। आपकी इच्छा नहीं थी कि हम वैतनिक होकर कहीं कार्य करें, तथापि केवल मित्रों की इच्छा से और विशेषतः इस कारण से कि वहां पर रहने से वेद सम्बन्धी विज्ञता और बढ़ेगी इसलिये आपने इस पदको स्वीकार कर लिया था, इस पद प्राप्ति के साथ ही आपने यह संकल्प कर लिया था कि पांच वर्ष से अधिक हम इस पद पर नहीं रहेंगे।

वास्तव में कलकत्ते के विश्वविद्यालय में वेद विषय के प्रोफेसर नियत होने से यह भी सिद्ध हुआ कि अपने समय में आपही वेद विषय के सबसे बड़े पण्डित थे, क्योंकि कलकत्ता विश्वविद्यालय ही इस समय भारतवर्षीय यूनीवर्सिटियों में सर्व प्रधान है। उस समय कलकत्ता यूनीवर्सिटी के वाइस चैंसलर श्री बा० आशुतोष मुखोपाध्याय थे, बंगाल में आप शिक्षा विषय के अद्वितीय ज्ञाता माने जाते हैं। आपके ही विशेष अनुरोध से वेदव्याख्याता जी ने इस पद को स्वीकार किया था।

पण्डित जी जिस समय कलकत्ता यूनीवर्सिटी में वेदाध्यापनार्थ गये तो आप बंगला जानते न थे, और यूनीवर्सिटीमें एम० ए० में वेद विषयके लेने वाले सब छात्र बङ्गाली

थे, आप क्लास में जब पहिले दिन पढ़ाने पहुंचे तो बङ्गाली छात्रों ने आपका विशेष स्वागत किया और पूंछा कि आप किस भाषा में पढ़ायेंगे, आपने कहा कि हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं में से जिसमें आप कहें हम व्याख्यान दें। पहिले दिन आपने हिन्दी में व्याख्यान दिया तो बङ्गाली छात्रों की समझ में अच्छी तरह नहीं आया, तब दूसरे दिन आपने संस्कृत में भाषण किया तो वे प्रसन्न हुए और आगे फिर पण्डित जी बराबर पांच वर्ष तक संस्कृतमें ही ग्रन्थों की व्याख्या करते रहे।

यूनीवर्सिटी में सप्ताहमें केवल पांच दिन आपको पढ़ाना पड़ता था, सप्ताह में ७ घण्टे से अधिक औसत न पड़ता था, कभी २ तो पढ़ाने का समय और भी कम होजाता था इस पर भी विशेषता यह थी कि आपको पढ़ाने में स्वतन्त्रता थी यदि आप किसी दिन न जावें तो कोई कुछ न कह सकता था।

आपकी वेद विषयक योग्यता की कलकत्ता नगर में सर्वत्र शीघ्र ही प्रसिद्धि होगई। कितने ही विद्वान् आप से घरपर भी वेद विषयक ग्रन्थों को आकर पढ़ा करते थे, कलकत्ते में अनेक सभाओं में समय २ पर आप सभापति बनाये जाते थे। पर आप कभी भी इस बात की इच्छा न करते थे कि हमें सभापति बनाया जाय, आप सभापति होने को भी एक प्रकार का बन्धन मानते थे। जिन दिनों आप कलकत्ते में विश्वविद्यालय में लेक्चरार थे उन्हीं दिनों श्री पं० मदनमोहनजी मालवीय हिन्दू विश्वविद्यालय सम्बन्धी कार्य से कलकत्ता गये थे वहां पर श्री मालवीय जी [illegible] जी से मिले, और कहा कि आपने यहां आकर बहुत

किया अब हिन्दू विश्वविद्यालय शीघ्र खुलने वाला है। यहां से चलकर आप उसी की प्रतिष्ठा बढ़ावें, पण्डित जी ने उत्तर दिया कि अब वैतनिक होकर हम कहीं कार्य न करेंगे हम पांच वर्ष का संकल्प यहां के लिये कर चुके हैं इसके बाद हमारा विचार एकान्त में गङ्गातट सेवन करने का है। मालवीयजी ने फिर कहा कि यह तो और भी अच्छी बात है, काशी में आपके लिये सब सुविधायें है। मालवीय जी के अधिक अनुरोधसे आपने यह स्वीकार करलिया था कि हम अवैतनिक रूपसे थोड़े दिनों तक हिन्दू विश्वविद्यालयमें कार्य कर देंगे।

पांच वर्ष व्यतीत होने के बाद विश्वविद्यालय (यूनीवर्सिटी) की नौकरी छोड़ने की जब आपकी इच्छा हुई तो "वैसलर„ साहब ने आपका पहला त्यागपत्र अस्वीकार कर दिया तब आपने दूसरा भी दिया उक्त साहब बहादुर ने आपसे यह भी कहा था कि यदि आपको अधिक समय पढ़ाने में लगता है तो आप के लिये समय कुछ कम करदें परन्तु नौकरी अभी आप न छोड़ें। परन्तु संसार की अनित्यता का विचार आपके हृदय में ऐसा जागृत हो चुका था कि उसने आपको इस सर्व-मान्य पदके त्याग देने के लिये सर्वथा बाधित ही किया। जहां "प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा" की शान्त घोषणा अन्तः करण में निरन्तर होरही हो वहां संसारका कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं कि जो निश्चित सिद्धान्त से आप जैसे मनस्वी जनों को विचलित कर सके, आप का त्यागपत्र स्वीकार होने पर कलकत्ता यूनीवर्सिटी के रजिस्टरार ने आपको जो पत्र लिखा उसे हम नीचे अविकल रूप से उद्धृत करना उचित समझते हैं।

(मूल अंग्रेजी पत्र)

Senate House,
17 March 1917,

From P. Brühl, Esq D.sc, I. S. O., F. R. S., F. G. S.
Registrar, Calcutta University.

To Pandit Bhimsen Shastri.

Sir,

By direction of the Hon'ble the Vice Chancellor & the Syndicate, I have the honour to inform you that your resignation as Vedic Lecturer of this University has been accepted with effect from the 30th June 1917.

I am to convey to you appreciation by the authorities of this University of the services which you have rendered to the University of Calcutta.

I have the honour to be
Sir,
Your most obedent Servant,
(Sd) P. Bruhl,
Registrar.

[हिन्दी–अनुवाद]

महाशय !

माननीय वायस चेंसलर और सिंडीकेट सभा की आज्ञा से मैं आपको सादर सूचित करता हूं कि इस यूनीवर्सिटीके "वैदिक लेक्चरार" के पदसे सम्बन्ध छोड़ देने का आपका त्यागपत्र ३० जून सन् १९१७ से स्वीकृत किया गया है। आपने कलकत्ता यूनीवर्सिटी की जो सेवायें की हैं उन्हें इस यूनीवर्सिटी के अधिकारियों ने प्रशंसा योग्य समझा है अतः मैं आपको यह शुभ संदेश भी प्रेषित करता हूं।

(हस्ताक्षर) पी० ब्रुहल्

वस्तुतः कलकत्ता-यूनीवर्सिटीका उक्त पद महान् श्लाघनीय और प्रार्थनीय था उसे आपने इस प्रकार तृणके समान त्यागकर अपने स्वभाव सिद्ध चारित्र्यका हमें एक अन्य स्फुट दृश्य दिखलाया है। आपने संसार में जितने कार्य किये उनमें महात्माओं के आदर्श का ही पद २ पर अनुसरण किया था। वही बात आपने इस ऊर्ध्वलिखित पद त्यागमें भी प्रदर्शित की है। जैसा कि एक प्राचीन वचनमें कहा भी है:—

अहो बत विचित्राणि चरितानि महात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्ति च ॥

अर्थ—अहो! महात्मा पुरुषों के चरित्र कैसे अद्भुत हैं कि लक्ष्मी को तृण के तुल्य समझते हैं और उसके बोझ से नम्र बन जाते हैं।

७—सप्तम प्रकरण।

मुह्यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
स तीर्थपदसेवायां जीवन्नपि मृतो हि सः॥

अन्तिम विचार तथा कृत्य।

कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बन्ध विच्छिन्न होने पर सबसे पहले आपने अपनी जन्मभूमि (लालपुर) में एक शिवालय तथा कूप बनवाया। इस शिवालय में आपने पञ्च देवों की उपासना के सिद्धान्तानुसार पांचों देवों की स्थापना तथा प्रतिष्ठा गतवर्ष (सं० १९७४) के भाद्रपद मास में वेदोक्त विधिसे कराई थी। इस धर्म कार्य के सम्पादन के लिये मथुरासे पं० अमृतराम जी पंड्या बुलाये गये थे। अन्य विद्वान् तथा इष्ट मित्र बन्धु बान्धवगण भी इस अवसर पर एकत्रित किये गये थे। यह समागम अभूतपूर्व ही था। लग भग ग्यारह सौ रुपये इसमें आपने व्यय किये थे।

कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बन्ध विच्छिन्न होने के बाद आपने ५-६ महीने तक इटावे में निवास किया, यज्ञ के प्रारम्भ करने का मुहूर्त आपने वसन्तऋतुमें रक्खा था जैसा कि श्रौतसूत्रों में भी लिखा है कि "वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत" ब्राह्मण वसन्तऋतु में अग्न्याधान करे। इस लिये आप चैत्र के प्रारम्भ से इस कार्य को करना चाहते थे इन्हीं दिनों आपके पास हिन्दू विश्वविद्यालय काशीसे पत्र प्राप्त हुआ जिसमें विश्वविद्यालय में वेद लेक्चरार के पद स्वीकार किये जाने की आप से प्रार्थना की गई थी और १२५) वेतन दिये जाने की सूचना भी दी गई थी पर जब आप २५०) वेतन की स्वतन्त्र नौकरी छोड़ चुके कब सम्भव था कि आप पराधीनता के इस

पढ़ते, कलकत्ता विश्वविद्यालय का त्यागपत्र देते समय ही आप यह शोच चुके थे कि चाहे जैसी बड़ी नौकरी मिले उसे स्वीकार न करेंगे इसीसे आपने निषेध कर दिया।

आपने स्वोपार्जित द्रव्य में से २५००) रुपये इसलिये पृथक् रख लिये थे कि जिसके द्वारा आधे में जन्मभूमिका उक्त शिवालय और आधे से नरवर का अन्तिम यज्ञ पूरा होसके इनमें पहले से तो आप निश्चिन्त होचुके थे और दूसरे की आयोजना आरम्भ करदी थी।

निवृत्ति-मार्गके लिये आप कई वर्ष से उत्सुक थे परन्तु आपके हाथ अवसर अभी तक न आया था। आप यह से यही चाहते थे कि शास्त्रोंकी, आज्ञानुसार कुछ धर्मानुष्ठान करके प्रवृत्तिमार्ग को छोड़ें। वेद रीति से धर्म के मुख्य दो भाग हैं एक इष्ट (यज्ञ) दूसरा पूर्त्त। जिसमें पूर्त्त की परिभाषा इस प्रकार है:—

वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामः पूर्त्तमित्यभिधीयते।

बावड़ी, कूप, तालाब, धर्मशाला, बाग, बगीचा, देवमन्दिर इनका निर्माण कराना अन्नक्षेत्र (सदावर्त आदि) लगाना, प्याऊ बैठाना इत्यादि कार्य पूर्त्त के अन्तर्गत माने गये हैं। इनमें लगभग बीस वर्ष से आपकी प्याऊ ग्रीष्म के समय इटावा में बैठती है तथा जन्मभूमि का आपका पूर्व लिखित शिवपञ्चायतन आप निर्माण करा चुके ही थे। अब केवल यज्ञ करना ही शेष था। आपका अधिक काल उक्त मन्दिर तथा कूप आदि के निर्माण में लग गया क्योंकि लकड़ी ईंट आदि सामग्री तथा कर्मकर (मजदूर) आदि का समय पर मिलने में प्रायः अभाव होता रहा, इन कार्योंमें

कैसी २ तथा कठिनाइयां होती हैं इनका अनुभव उन्हें कदापि नहीं होसकता कि जिनको ऐसे कार्य करानेका कभी काम नहीं पड़ा है ।

जब शिवप्रासाद तथा कूप बनकर तैयार होगये तो आपने उनकी प्रतिष्ठा का महोत्सव बड़े उत्साह के साथ गत माघपद् में कर दिया । ब्रह्मभोज भी बहुत बड़ा किया गया था । निमन्त्रण पत्र भेज २ कर अपने इष्ट मित्र तथा सम्बन्धिगण को दूर २ से बुला लिया था । इस प्रकार आपने एक चिरकालाभिलषित इच्छा को तो पूर्ण कर लिया था ।

अब आप अहर्निश अपनी दूसरी इच्छा की पूर्ति के लिये चिन्तातुर होरहे थे । काशी के विद्वानों से वह विषयक पत्र व्यवहार चल रहा था तथा यज्ञ सम्बन्धी पात्रों के निर्माण का प्रबन्ध होरहा था कि तीर्थराज प्रयाग का द्वादश वार्षिक कुम्भ निकट आ पहुंचा । महापर्व का अवसर और सनातनधर्म महासभा का आह्वान दोनों ने मिलकर आपके विचारों को थोड़े दिन के लिये स्थगित कर दिया । हमारे माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जी ने बड़े आग्रहसे आपको प्रयाग बुलाया था अतः आप उक्त महासभामें योग देने के लिये गत कुम्भ पर प्रयाग गये थे । महासभा के इस अधिवेशन में अनेक सामयिक प्रस्ताव उपस्थित होकर स्वीकृत किये गये । इनमें सबसे अधिक महत्व जिसे हम देसकते हैं वह धर्म परिषद् की स्थापना का प्रस्ताव था । सनातन धर्म की सैकड़ों बातें ऐसी हैं जिनको हमारे देश के शिक्षित लोग सायंस या फिलासफी से विरुद्ध सृष्टिक्रम [कानून कुदरत] से विपरीत तथा असम्भव समझते हैं । हमारे धर्मके अनेक मन्तव्यों को बहुत से लोग वाहियात कह देते हैं । आजकल सनातनधर्म के बहुत से अंग अव्यवस्थित तथा वि-

पढ़ते, कलकत्ता विश्वविद्यालय का त्यागपत्र देते
आप यह सोच चुके थे कि चाहे जैसी बड़ी नौ[illegible]
उसे स्वीकार न करेंगे इसीसे आपने निषेध कर दि[illegible]

आपने स्वोपार्जित द्रव्य में से २५००) रुपये [illegible]
थक् रख लिये थे कि जिसके द्वारा आधे में जन्मभू[illegible]
शिवालय और आधे से नरवर का अन्तिम यज्ञ पू[illegible]
इनमें पहले से तो आप निश्चिन्त होचुके थे और
आयोजना आरम्भ करदी थी।

निवृत्ति-मार्गके लिये आप कई वर्ष से [illegible]
न्तु आपके हाथ अवसर अभी तक न आया था।
से यही चाहते थे कि शास्त्रोंकी आज्ञानुसार कुछ
करके प्रवृत्तिमार्ग को छोड़ें। वेद रीति से धर्म [illegible]
भाग हैं एक इष्ट (यज्ञ) दूसरा पूर्त्त। जिसमें
रिभाषा इस प्रकार है:—

वापीकूपतड़ागानि देवतायतनानि [illegible]
अन्नप्रदानमारामः पूर्त्तमित्यभिधीय[illegible]

बावड़ी, कूप, तालाब, धर्मशाला, बाग,
मन्दिर इनका निर्माण कराना अन्नक्षेत्र (
लगाना, प्याऊ बैठाना इत्यादि कार्य पूर्त्त
गये हैं। इनमें लगभग बीस वर्ष से आपकी
सभा इटावा में बैठती है तथा जन्मभूमि
लिखित शिवपञ्चायतन आप निर्माण करा
केवल यज्ञ करना ही शेष था। आपका अ
मन्दिर तथा कूप आदि के निर्माण में लग
कड़ी ईंट आदि सामग्री तथा कर्मकर (मज[illegible]
समय पर मिलने से प्रायः अनाज होता रहा

था या लोगोंकी इच्छानुसार आपने इसमें व्याख्यान दिया था और कहा था कि आर्यसमाज और सनातनधर्म सभायें मिलकर जो कार्य कर सकती हैं वह यही है जो सेवा समितियों ने इस समय अपने हाथों में लिया है हमारे नव शिक्षित युवाओं को इस कार्य में तन मन धन तीनों समर्पित कर देने चाहिये । हम आशा करते हैं कि आप लोगों के उद्योग से भारत भूमि में " स्वयं सेवक दल " की संख्या में वृद्धि होगी ।

जिस समय आप इटावा से प्रस्थित होकर नरवर जारहे थे तो आपके साथ इक्के में आपके कनिष्ठ पुत्र पं० वेदनिधि शर्मा तथा यह लेखक दोनों स्टेशन तक पहुंचाने आये थे । आप शिव पूजा का माहात्म्य इक्के में बैठे २ भी वर्णन कर रहे थे और यह भी कह रहे थे कि इस बार तो हमने शिवरात्रि का उत्सव अपने हाथसे कर दिया है आगे को प्रत्येक शिवरात्रि पर ये वेदनिधि लालपुर जाकर किया करेंगे । हम अब नियमितमार्गके कार्यों में लगना चाहते हैं ।

शिवजी का पूजन समाप्त करके जब आप लालपुर से चलने लगे तो अपने भ्राताओं तथा अन्य बन्धु बान्धवों को समझाने लगे कि अब हमारा और आपका यह अन्तिम सम्मिलन है अब फिर हम यहां नहीं आवेंगे । यही बात इटावा में भी आप घरके सब बड़े छोटों से कह कर चले थे । जब जन्मभूमि से आप इटावा आये तो यह लेखकभी उसी दिवस आपके दर्शन करके कृतकृत्य हुआ । तब आप बोले कि प्रह्लाददेव शर्मा शास्त्री परीक्षा देने पञ्जाब गये हुए हैं, अच्छा हुआ कि तुम आगये । अब हम नरवर को जाते हैं क्योंकि फाल्गुण शुक्ल द्वितीया का मुहूर्त हम पहले से ही निश्चित कर चुके हैं । बिना बड़े कारण के हम इसे उलटना

वादास्पद भी होरहे हैं इन सबकी सुविधाके लिये एक धर्म परिषद् की बड़ी आवश्यकता थी। महासभा में इस प्रस्ताव को आपने ही उपस्थित किया था तथा इसके लिये आपने बड़ा बल भी दिया था सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव भी स्वीकृत होगया।

प्रयाग के इस कुम्भ पर सेवासमिति की ओर से यात्रियों की जैसी सेवा की गई थी उसे आप मुक्तकण्ठ से सराहते थे जब आप नौका में बैठकर अपनी विद्वन्मण्डली के साथ त्रिवेणी स्नानार्थ गये तो ठीक संगम के स्थल की रेणुका भी लाये थे। उसे आपने एक टीन की डिब्बी में रख छोड़ा था। इस लेखक को भी आपने उसमें से कुछ कण प्रसाद स्वरूप दिये थे। कहां तक लिखें तीर्थ तथा सनातनधर्म के अन्य सिद्धान्तों में आपकी अनन्य श्रद्धा थी।

प्रयाग के कुम्भसे लौटकर ज्योंही आप इटावा आये तो शिवरात्रि का पर्व समीप आगया। जो शिवपञ्चायतन आपने अपने हाथों से छै महीने पूर्व स्थापित तथा प्रतिष्ठित किया था उसके प्रथम उत्सव को भी आपने स्वयं करना चाहा। व्रत, रात्रिजागरण, पूजन, स्तोत्रपाठ, रुद्राष्टाध्यायी पाठ आदि कृत्य करते हुए ही आपने शिव चतुर्दशी की वह रात्रि बिताई। वहांसे लौटकर जब आप दूसरे दिन इटावा आये थे तो कहते थे कि ज्यों २ हम अधिक पाठ तथा पूजन करते थे तो शरीर में नये बल का सञ्चार अनुभव होता था शिवजी ने ऐसा करके हमें यह परिचय दिया जान पड़ता है कि आगामी यज्ञ में जो व्रत, उपवास आदि कष्ट सहन करने पड़ेंगे उन्हें हम भले प्रकार सहन कर सकेंगे।

लालपुर से इटावा लौटते हुए आप कुछ घण्टोंके लिये सैंतपुरी में ठहरे थे। वहां पर सेवा समिति का उत्सव हो

रहा था लोगोंकी इच्छानुसार आपने उसमें व्याख्यान दिया था और कहा था कि आर्यसमाज और सनातनधर्म सभायें मिलकर जो कार्य कर सकती हैं वह यही है जो सेवा समितियों ने इस समय अपने हाथों में लिया है हमारे नव शिक्षित युवाओं को इस कार्य में तन मन धन तीनों समर्पित कर देने चाहिये। हम आशा करते हैं कि आप लोगों के उद्योग से भारत भूमि में " स्वयं सेवक दल " की संख्या में वृद्धि होगी।

जिस समय आप इटावा से प्रस्थित होकर नरवर आरहे थे तो आपके साथ इक्के में आपके कनिष्ठ पुत्र पं० वेदनिधि शर्मा तथा यह लेखक दोनों स्टेशन तक पहुंचाने गये थे। आप शिव पूजा का माहात्म्य इक्के में बैठे २ भी वर्णन कर रहे थे और यह भी कह रहे थे कि इस बार तो हमने शिवरात्रि का उत्सव अपने हाथसे कर दिया है आगे को प्रत्येक शिवरात्रि पर ये वेदनिधि लालपुर जाकर किया करेंगे। हम अब निवृत्तिमार्गके कार्यों में लगना चाहते हैं।

शिवजी का पूजन समाप्त करके जब आप लालपुर से चलने लगे तो अपने भाताओं तथा अन्य बन्धु बान्धवों को समझाने लगे कि अब हमारा और आपका यह अन्तिम सम्मिलन है अब फिर हम यहां नहीं आयेंगे। यही बात इटावा में भी आप घरके सब बड़े छोटों से कह कर चले थे जब जन्मभूमि से आप इटावा आये तो यह लेखकभी उस दिवस आपके दर्शन करके कृतकृत्य हुआ। तब आप बोले कि प्रह्लादेव शर्मा शास्त्री परीक्षा देने पहुंचाये गये हुए हैं अच्छा हुआ कि तुम आगये। अब हमें नरवर को जाते क्योंकि फाल्गुण शुद्ध द्वितीया का मुहूर्त हम पहले से ही निश्चित कर चुके हैं। बिना बड़े कारण के हम इसे उलट

वादास्पद भी होरहे हैं इन सबकी सुविधाके लिये एक धर्म परिषद् की बड़ी आवश्यकता थी। महासभा में इस प्रस्ताव को आपने ही उपस्थित किया था तथा इसके लिये आपने बड़ा बल भी दिया था सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव भी स्वीकृत होगया।

प्रयाग के इस कुम्भ पर सेवासमिति की ओर से यात्रियों की जैसी सेवा की गई थी उसे आप मुक्तकण्ठ से सराहते थे जब आप नौका में बैठकर अपनी विद्वन्मण्डली के साथ त्रिवेणी स्नानार्थ गये तो ठीक संगम के स्थल की रेणुका भी लाये थे। उसे आपने एक टीन की डिब्बी में रख छोड़ा था। इस लेखक को भी आपने उसमें से कुछ कण प्रसाद स्वरूप दिये थे। कहां तक लिखें तीर्थ तथा सनातनधर्म के अन्य सिद्धान्तों में आपकी अनन्य श्रद्धा थी।

प्रयाग के कुम्भसे लौटकर ज्योंही आप इटावा आये तो शिवरात्रि का पर्व समीप आगया। जो शिवपञ्चायतन आपने अपने हाथों से छै महीने पूर्व स्थापित तथा प्रतिष्ठित किया था उसके प्रथम उत्सव को भी आपने स्वयं करना चाहा। व्रत, रात्रिजागरण, पूजन, स्तोत्रपाठ, रुद्राष्टाध्यायी पाठ आदि कृत्य करते हुए ही आपने शिव चतुर्दशी की वह रात्रि बिताई। वहांसे लौटकर जब आप दूसरे दिन इटावा आये थे तो कहते थे कि ज्यों २ हम अधिक पाठ तथा पूजन करते थे तो शरीर में नये बल का सञ्चार अनुभव होता था शिवजी ने ऐसा करके हमें यह परिचय दिया जान पड़ता है कि आगामी यज्ञ में जो व्रत, उपवास आदि कष्ट सहन करने पड़ेंगे उन्हें हम भले प्रकार सहन कर सकेंगे।

लालपुर से इटावा लौटते हुए आप कुछ घण्टोंके लिये मैनपुरी में ठहरे थे। वहां पर सेवा समिति का उत्सव हो

रहा था लोगोंकी इच्छानुसार आपने उसमें व्याख्यान दिया था और कहा था कि आर्यसमाज और सनातनधर्म सभायें मिलकर जो कार्य कर सकती हैं वह यही है जो सेवा समितियों ने इस समय अपने हाथों में लिया है हमारे नव शिक्षित युवाओं को इस कार्य में तन मन धन तीनों समर्पित कर देने चाहिये । हम आशा करते हैं कि आप लोगों के उद्योग से भारत भूमि में " स्वयं सेवक दल " की संख्या में वृद्धि होगी।

जिस समय आप इटावा से प्रस्थित होकर नरवर आरहे थे तो आपके साथ इक्के में आपके कनिष्ठ पुत्र पं० वेदनिधि शर्मा तथा यह लेखक दोनों स्टेशन तक पहुंचाने आये थे। आप शिव पूजा का माहात्म्य इक्के में बैठे २ भी वर्णन कर रहे थे और यह भी कह रहे थे कि इस बार तो हमने शिवरात्रि का उत्सव अपने हाथसे कर दिया है आगे को प्रत्येक शिवरात्रि पर ये वेदनिधि लालपुर जाकर किया करेंगे। हम अब निवृत्तिमार्गके कार्यों में लगना चाहते हैं।

शिवजी का पूजन समाप्त करके जब आप लालपुर से चलने लगे तो अपने भ्राताओं तथा अन्य बन्धु बान्धवों को समझाने लगे कि अबो हमारा और आपका यह अन्तिम सम्मिलन है अब फिर हम यहां नहीं आवेंगे। यही बात इटावा में भी आप घरके सब बड़े छोटों से कह कर चले थे। जब जन्मभूमि से आप इटावा आये तो यह लेखकभी उसी दिवस आपके दर्शन करके कृतकृत्य हुआ। तब आप बोले कि प्रेमदेव शर्मा शास्त्री परीक्षा देने पञ्जाब गये हुए हैं, अच्छा हुआ कि तुम आगये। अब हम नरवर को जाते हैं क्योंकि फाल्गुण शु० द्वितीया का मुहूर्त हम पहले से ही निश्चित कर चुके हैं। बिना बड़े कारण के हम इसे उलटना

नहीं चाहते। निदान इस लेखक ने भी यही प्रार्थना की, कि आपको यज्ञ का पूर्वरूप जपानुष्ठान करना है उसमें विलम्ब कभी न होना चाहिये आपने तदनुसार ही किया। इन बातों से स्पष्ट सिद्ध है कि आप संसार से नितान्त अपना सम्बन्ध छोड़ चुके थे अब यज्ञ को समाप्त करके निवृत्तिमार्ग पर आरूढ़ होना ही आपका एकमात्र मनोरथ था। अब आप अपने अन्तिम जीवन काल को केवल परमार्थ सिद्धि में ही लगाने के उत्सुक बने हुए थे। सोते, जागते, उठते, बैठते आपको यज्ञ का ही एक ध्यान था। जगत् के कार्यों में अब यही एक कर्त्तव्य आपके लिये शेष रह गया था आप पहले भी कईवार दूसरों के धनसे यज्ञ करा चुके थे। परन्तु अब आपको अपने धनसे अपना यह अन्तिम समय का यज्ञ समाप्त करना था। इस लेखक से यह भी पं० जीवनदत्त जी (ब्रह्मचारी) कहते थे कि श्रीगुरुवर्यजीकी अन्त समयमें यह भी इच्छा थी कि यदि मुरादाबाद निवासी पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र तथा मेरठ निवासी पं० तुलसीराम (स्वामी) आज जीवित होते तो हम उन्हें भी परमार्थ के मार्ग में अपना अनुगामी बनाते। इस बातसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि जिन के साथ आपका पूर्व सौहार्द होता था उसे कभी आप त्यागते न थे। पं० तुलसीराम जी यद्यपि आ० स० के शिखर बने हुए थे और अन्त समय तक वे अपने वेदप्रकाश में आ० स० के विरुद्ध लेख देते रहे थे तथापि आपके हृदय में कुछ भी कल्मष उनके प्रति न था।

वस्तुतः उक्त दोनों स्वर्गीय विद्वानों के साथ आप का वर्षों तक साहचर्य तथा सम्मेलन रहा था अन्त समयमें उनकी ओर आपकी चित्त वृत्ति जाने से आपको यह एक दैवी प्रेरणा हुई थी कि अन्तिम समय अब सन्निकट आपहुंचा है इस यज्ञको करके जगत् के समक्ष आप संन्यास आश्रम का

वास्तविक आदर्श रखने के लिये यहां स्वयं हीरहे थे। उधर मृत्यु भी आपको जगत् से शीघ्र उठाने के लिये उतना ही चिन्तातुर बना हुआ था।

गत फाल्गुन शुक्ला द्वितीया (सं० १९७४) को आपने इटावा छोड़ा और उसी दिन सायंकाल को आप नरवर जा पहुंचे। वहां फाल्गुन शु० तृतीया से ही आपने दुग्ध तथा फलाहारका सेवन करते हुए अपना अनुष्ठान आरम्भ करदिया था, आपकी तपश्चर्या का यह क्रम चैत्र कृष्णा चतुर्थी तक बराबर चलता रहा। चैत्र कृष्णा पंचमी को आपको साधारण ज्वर होगया। इसे साधारण ज्वर समझकर आपने प्रातः स्नान तथा सन्ध्यादि कर्म को न छोड़ा। आपने अपनी इच्छा से कुछ विरेचन की औषध लेली जिससे दस्त होने लगे फिर वैद्यों की सम्मति से आपने दस्त रोकने की औषध ली जिससे दस्त तो रुक गये परन्तु हिचकी आरम्भ होगई जोकि यह भी जाती रही, अब चैत्र कृष्णा दशमीको ज्वर पुनर्वार बढ़ा वैद्यों को सन्देह बढ़ने लगा। ऐसी भयङ्कर रोग दशामें तथा प्राणान्त होनेके दिन तक भी आप लघुशङ्का करनेको अपनी लाठी के सहारे स्वयमेव कुटी से बाहर जाते थे, थाली रखने के लिये आपसे प्रार्थना की गई थी कि उसमें ही मूत्र का त्याग करते रहिये परन्तु इसे आपने सर्वथा अस्वीकार किया पं० जीवनदत्त जी ने ऐसा देखकर इटावा को तार दिया। पं० ब्रह्मदेव जी अपनी माता को साथ लेकर एकादशी की रात्रि को इटावा से प्रस्थित होकर द्वादशीको प्रातः ही नरवर जा पहुंचे। उस समय आपका भाषण बन्द होचुका था परन्तु इससे थोड़े ही पहले एक वेद मन्त्रका अर्थ आप लोगों को समझा रहे थे, अन्तिम समय में भी आपका ध्येय यज्ञ तथा वेद ही था। डाक्टरी दवा लेने को भी आपको सम्मति दी गई थी परन्तु इसे आपने स्वीकार न किया। उसी

दिन चैत्र कृष्णा द्वादशी सं० १९७४ को ६४ वर्ष की अवस्था में प्रातः काल के आठ बजे यज्ञस्वरूपी विष्णु भगवान् की भावना करते हुए आप अपनी ऐहिक लीला संवरण करके परम धाम को सदा के लिये प्रस्थान करगये। इस प्रकार उसदिन सुरभारती का एक सुपुत्र, विद्वन्मण्डली का एक मनस्वी नायक, वैदिक साहित्य का पारगन्ता, शास्त्रार्थ समर का अद्वितीय विजेता, सनातनधर्म का एक महारथी योद्धा धर्म के निगूढ़ प्रश्नों का निर्णय कर्त्ता, वेदविरोधियों का गर्व निहन्ता, ब्राह्मणों का सच्चा प्रतिनिधि, प्राचीन महर्षियों का कीर्त्तिस्तम्भ, वर्णाश्रम धर्मियों का संरक्षक, देशोन्नति का यथार्थ पोषक, भारतभूमि का एक समुज्वल रत्न, हिन्दी का एक पूत सपूत, आर्यवंश का जाज्वल्यमान भास्कर भारतवर्ष का पूज्यपाद, महामहिमान्वित शास्त्री, कोटि २ भारतीयों का धर्म पिता अपने प्यारे देशवासियों को सदा के लिये शोकसागर में निमग्न करके सुरलोक का चिरप्रवासी बन गया, आह! हमें अब आपकी उस प्रशान्त तथा भव्य मूर्त्तिके दर्शन न होंगे। अब आपका स्वरूप केवल चित्रपटों में देख करही हमलोग अपनी दर्शन लालसाकी पूर्त्ति किया करेंगे।

धन्य हो धन्य हो श्रीगुरुदेव महोदय! आपने अपने मानव जीवन को सुफल करके ही सुरपुर की यात्रा की है आपने सदैव अपने सुचरितों और सद्विचारों से धर्मकी मर्यादा की ही रक्षा की है अतः आपके लिये भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक आदिमें सर्वत्र ही देवगण स्वागत करेंगे। आप के आशीर्वाद की निरन्तर आकाङ्क्षा रखने वाले हम अकिञ्चन जन जो कि आपके शिष्य कहाते हैं इस जगती तल पर आपका अनुरूप "स्मारक" स्थापित हुआ देखकर ही अपने जीवन को सफल मानेंगे। आप हमारी इस इच्छा को पूर्ण करने को समर्थ हैं आपही हम पर दया करेंगे।

८—अष्टम प्रकरण ।

यस्य जना न वदन्ति महत्त्वं, नोसमरे मरणं विजयं वा
न च सदानमहाधनतो वा, तस्यभवः कृमिकीटसमानः ॥

शोक और सहानुभूति ।

हमारे चरित्रनायककी स्वर्गयात्रा चैत्र कृष्ण द्वादशी सं० १९७४ तदनुसार ता० ८ अप्रैल १९१८को हुई थी, मृत्यु से पूर्व आपकी रुग्ण दशा का समाचार देश भरमें कहीं विख्यात न हुआ था, क्योंकि वह बहुत साधारण रूप में प्रारम्भ हुआ था और एक दो दिन पूर्व तक यह सन्देह नहीं था कि आप इतना शीघ्र प्रयाण कर जायेंगे इसीलिये जब देशभरमें एकाएक आपके स्वर्गगमनका समाचार फैला तो लोग शोकाक्रान्त ही नहीं होगये किन्तु एक आश्चर्य भी लोगों में फैल गया। दैनिक और साप्ताहिक पत्रों में सबसे पहिले यह समाचार प्रकाशित हुए। समाचार पत्रों ने आपकी विद्वत्ता के विषय में जो राय दी है उसको प्रकाशित करना आवश्यक है अतः हम उनकी सम्मति अविकल उद्धृत करते हैं। यद्यपि दैनिक और साप्ताहिक पत्रों में आपकी स्वर्गयात्राका समाचार पहिले निकला था तथापि यहां मासिकपत्रों को प्रथम स्थान दिया गया है।

(सरस्वती, मई १९१८)

पं० भीमसेन शर्मा का देहावसान ।

इटावे के पं० भीमसेन जी शर्मा का नश्वर शरीर छूट गया। यह शोकदायक घटना गत ८ एप्रिल सोमवारको प्रातःकाल हुई। पण्डित जी का विचार एक यज्ञ करने के इरादे से आप जि० बुलन्दशहर के नरवर

गये थे। यह गांव गङ्गातट पर है। वहीं आपने यज्ञका अनुष्ठान करना चाहा था, परन्तु दुःख की बात है कि उनकी यह अन्तिम कामना पूरी न हुई।

संस्कृत भाषा और संस्कृत शास्त्रों का अध्ययन करके पण्डित जी आर्यसमाजके अनुयायी होगये थे उस समय स्वा० दयानन्द सरस्वती विद्यमान थे। उनके सहवास से पण्डित जीने स्वामी जी के संस्थापित समाज के सिद्धान्तोंका खूब अनुसरण किया, और स्वामीजीकी अधीनतामें रहकर समाज का बहुत कुछ काम भी किया पुस्तकें लिखीं अनुवाद किये, शास्त्रार्थ किये, लेख लिखे, जब तक आप आर्यसमाज के अनुयायी रहे तब तक आपने उसकी बहुत कुछ सेवा की परन्तु पीछे से कारणवश आपको समाज से अलग हो जाना पड़ा। तबसे आप सनातन हिन्दू धर्मके परिपोषक बन गये और प्रायः अन्त समय तक आर्यसमाज के अनेक सिद्धान्तों की प्रतिकूलता करते रहे। समाज छोड़ने पर आपने ब्राह्मणसर्वस्व नाम का मासिकपत्र निकाला। उसका अधिकांश अपने पक्ष के समर्थन और आर्यसमाज के आक्षेपों के खण्डन ही में खर्च करते रहे। श्रुतियों, स्मृतियों, शास्त्रों और पुराणों के मार्मिक ज्ञाता होने के कारण आपके लेख युक्ति-पूर्ण होते थे। कहीं २ कटुता और कठोरता आ भी जाती थी तो अधिक न खटकती थी।

पं० सत्यव्रत सामश्रमी के मरने पर कलकत्ता विश्वविद्यालय ने आपको वेद-व्याख्याता नियत किया। इस कारण आपकी ख्याति और भी बढ़ गई। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि सामश्रमी के बाद इनके सदृश वेदोंका ज्ञाता भारत में शायद और कोई न था। इस पद पर कई साल काम करके अभी हाल ही में आपने अवकाश ग्रहण किया था।

पं० भीमसेन जी के हृदय में अपनी विद्वत्ता का कुछभी गर्व न था। वे अपने से उम्र में छोटे और योग्यता में कम हम जैसे तुच्छ जनोंसे भी बड़े प्रेमसे मिलते और बात-चीत करते थे। कोई दो वर्ष हुए, एक बार हमने आपसे वैदिक साहित्य से सम्बन्ध रखने वाले, योरप के विद्वानों के लिखे हुए कितने ही ग्रन्थों का नाम बताया और उन में किन बातों का विचार किया गया है यह भी सूचित किया। इस पर आप बड़े प्रसन्न हुए। बताये हुए ग्रन्थों में से कुछ के नाम भी आपने लिख लिये और यह कहा कि मैं इन ग्रन्थों को प्राप्त करके इनमें वर्णित विषयों का ज्ञान सम्पादन करूंगा। हमारी प्रार्थना पर आपने यह भी स्वीकार किया कि विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करने पर मैं एक ऐसा ग्रन्थ लिखने की चेष्टा करूंगा जिसमें पश्चिमी देशों के वैदिक विद्वानों की भ्रमपूर्ण बातों का निदर्शन हो और वेद क्या हैं, उनकी कितनी शाखायें हैं, उनमें किन २ विषयों का वर्णन है इत्यादि बातों का भी उल्लेख रहे। खेद है कि आप यह काम करनेके पहले ही लोकान्तरित होगये।

(मर्यादा मार्च सन् १९१८)

स्वर्गीय प० भीमसेन शर्मा।

शोक के साथ लिखना पड़ता है कि गत चैत्र १२ को नरवर (राजघाट, जि० बुलन्दशहर में) संस्कृतके प्रकाण्ड विद्वान्, कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व वेदव्याख्याता और ब्राह्मणसर्वस्व, सम्पादक पं० भीमसेन शर्मा का देहान्त हो गया। कलकत्ता विश्व० से अलग होने पर उन्होंने एक यज्ञ करने का विचार किया था और इसी लिए वे नरवर गये थे। उनकी ऐसी आकस्मिक मृत्यु की किसीको कल्पना भी नहीं थी। पण्डित जी का जीवन बड़ा घटनापूर्ण रहा, पर-

शनिवार के दिन राजघाट के समीप नरवर नामक स्थान में पतित पावनी भगवती भागीरथी के किनारे लगभग ... वर्ष की अवस्था में पं० जी मानवलीला संवरण कर गये। पं० जी की कर्त्तव्यनिष्ठा तथा उनकी धर्मपरायणता बड़े ऊंचे दर्जे की थी। आप के अगाध पाण्डित्य का परिचय वे लोग भलीभांति पाचुके हैं जिनको कभी आपसे भेंट करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। विद्याध्ययन के अनन्तर आप आर्य समाज के अनुयायी होकर परम उत्साह के साथ आ० स० के सिद्धान्तों का मण्डन करते रहे। अहर्निश आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर मनन करने से क्रमशः आपने उन उन वैदिक प्रमाणों का यथार्थ तत्त्व पा लिया जिन पर आर्यसमाज की भित्ति खड़ी हुई थी, तब आपको मालूम हुआ कि आर्य-समाज का धर्म तो नितान्त असार है। यह निश्चित होते ही झट आपने आर्यसमाज के सिद्धान्तों को छोड़कर सनातन धर्मके सिद्धान्तों को अङ्गीकार किया। सनातन धर्मावलम्बी होकर इटावे के ब्रह्मप्रेस से आपने सनातनधर्म का प्रतिपादन करने वाले अनेक मौलिक और अनुवाद ग्रन्थ प्रकाशित किये। [illegible]
आपने [illegible]
पुष्ट कि [illegible]
सकता [illegible]
अध्यापक के पद पर नियुक्त किया था। अन्तिम समय में आप उक्त नरवर स्थान में यज्ञानुष्ठान का आयोजन कररहे थे परन्तु कुटिल काल ने यज्ञपूर्ति के पूर्व ही आपको इस संसारसे उठा लिया। पं० भीमसेन जी की मृत्युसे पं० समाज का एक देदीप्यमान रत्न जाता रहा। पं० जी के शोकाभिभूत आत्मीय जनों के साथ समवेदना प्रगट करते हुए हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वे पण्डित जी की दिवङ्गत आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

उस समय पं० भीमसेन जी ने आर्यसामाजिक सिद्धान्त की प्राणपण से पुष्टि की थी। प्रौढ़ावस्था में उन्हों ने अपना भ्रम समझा और फिर लगे आर्यसामाजिक सिद्धान्तों की धूलि उड़ाने और सनातनधर्मको पुष्टि करने। फिर अन्ततक उन्होंने सनातनधर्म का अशेष-उपकार किया। पं० भीमसेन उन लोगों में थे जो प्राचीन और नवीन दोनों अवस्थाओंके अनुभवी थे। जो हो, पं० भीमसेन जी के देहावसान से सनातनधर्म और सनातनधर्मियों की जो क्षति हुई है वह शीघ्र पूरी होने वाली नहीं। भगवान् पं० जी की आत्माको सद्गति प्रदान करे।

प्रताप ता० १५ अप्रैल सन् १९१८ ई०।

खेद की बात है कि इटावा के सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् पं० भीमसेन शर्मा का बुलन्दशहर ज़िले के नरवर ग्राम में देहान्त होगया। वे आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुगामियों और सहकारियों में से थे। पीछेसे वे सनातनधर्मी होगये थे और इस समय तो उनकी गणना उन विशेष विद्वानों में थी जिन पर सनातनधर्मियों को उचित गर्व है। पं० जी पुराने ढंग के धार्मिक पुरुष थे परन्तु देशकी वर्त्तमान अवस्था से बेखबर न थे और समाजमें कुछ आवश्यक परिवर्त्तनों का होना अनिवार्य मानते थे। हमें ऐसे विद्वान् के देहान्त पर दुःख है हम उनके पुत्र श्रीयुत ब्रह्मदेव जी से इस दुःख में समवेदना प्रकट करते हैं।

श्रीवङ्कटेश्वर समाचार ता० १९ अप्रैल सन् १९१८ ई०।

पं० भीमसेन जी का शरीरपात—यह लिखते शोक से हृदय विदीर्ण होता है, कि सनातनधर्मके धुरन्धर व्याख्याता सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० भीमसेन जी शर्मा का पाञ्चभौतिक शरीर अब इस नश्वर संसार में नहीं है। गत चैत्र कृष्णा द्वा-

इन समाचारपत्रों के सिवाय भारतवर्ष के अन्यान्य स- माचार पत्रों ने भी महीनों तक आपके गुणानुवाद गाये, विस्तारभय से यहां कुछ थोड़ेही समाचारपत्रोंकी राय आपके विषय में दीगई है। ब्राह्मणसर्वस्व भा० ५ अंक २ व ३ में अनेक समाचारपत्रों की सम्मतियां उद्धृत कीगई हैं पाठक उन्हें वहां देख सकते हैं।

शोक सभायें।

भारतवर्ष की सम्पूर्ण सनातनधर्म सभाओंने महीनों तक आपके शोक प्रदर्शनार्थ विशेष अधिवेशन करके आपके गुणा नुवाद गाये। अन्य देशहितकारिणी संस्थाओं ने भी तथा कई स्थानों के आर्यसमाजों ने भी आपके शोक में विशेष अधिवेशन करके शोक प्रदर्शित किया तथा आपके कुटुम्बि- यों एवं पं० ब्रह्मदेव जी के पास हार्दिक सहानुभूति के तार व पत्र भेजे। कितने ही विद्यालय आदि आपके शोक में बन्द रहे।

पत्र तथा तार।

देश भरके गण्य मान्य सज्जनों एवं भारतवर्ष के प्रसिद्ध २ विद्वानों ने पत्र तथा तार भेजकर आपके पुत्र पं० ब्रह्मदेव जी के पास सहानुभूति प्रकाशित की, विस्तार भयसे उनका उल्लेख नहीं किया गया।

अन्तिम प्रार्थना।

अन्त में जगदीश्वर से विनय है कि श्री गुरुदेव जी के उठाये हुए धर्मान्दोलन को पूर्ण करने की शक्ति उनके सुपुत्र पं० ब्रह्मदेव जी को दें जिससे चिरकाल तक पं० जी का नाम अवनी मंडल में प्रकाशित रहे।

॥ इति ॥